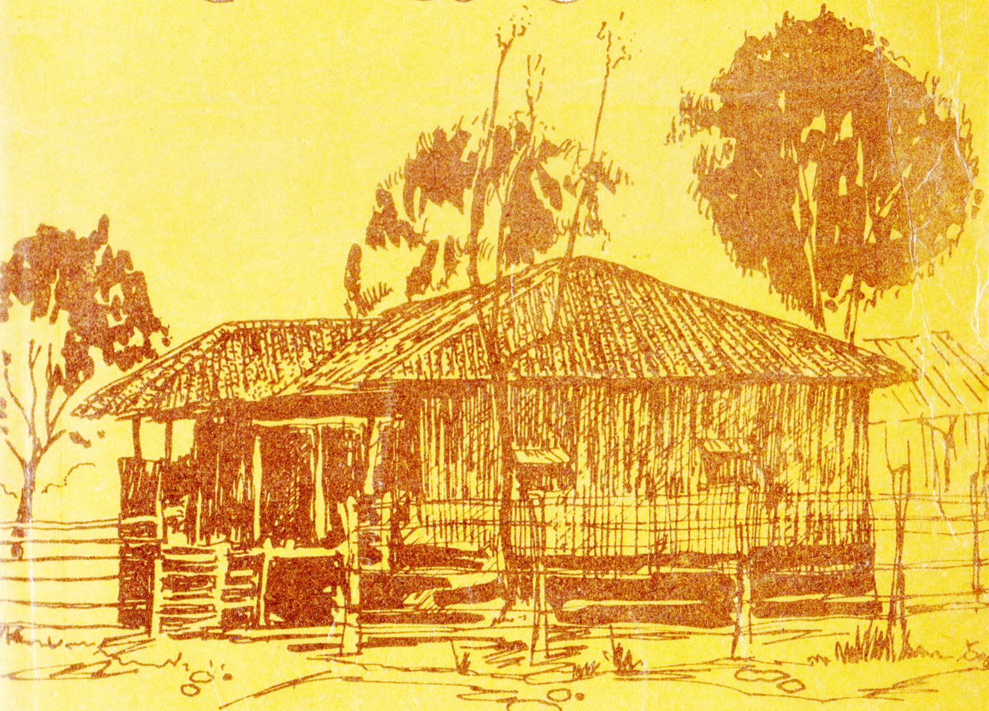
गाँधी जी के आश्रम में



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

पढ़ें और सीखें योजना

गाँधीजी के आश्रम में

डा० प्रभाकर माचवे

विभागीय सहयोग
हीरालाल बाछोंनिया

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

जून 1991
ज्येष्ठ 1913

PD 15T-PM

प्रकाशन सहयोग

सी.एन. राव : अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी : मुख्य संपादक
पूरनमल : संपादक

यू. प्रभाकर राव : मुख्य उत्पादन अधिकारी
डी. साई प्रसाद : उत्पादन अधिकारी
चंद्रप्रकाश टंडन : कला अधिकारी
सुबोध श्रीवास्तव : उत्पादन सहायक

मूल्य : रु० 6.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित तथा प्रिन्ट एंड फोटोटाइप सैटर्स, बी-62/8 नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़-II, नई दिल्ली 110 028 में फोटो कम्पोज़ होकर, सुप्रीम ऑफसेट प्रेस, के-5, मालवीय नगर, नई दिल्ली 110 017 में मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् लगभग तीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफ़ी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत, 'पढ़ें और सीखें' शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार की जा रही है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में निम्नलिखित विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जा रही हैं :

क. शिशुओं के लिए पुस्तकें
ख. कथा-साहित्य
ग. जीवनियाँ

घ. देश-विदेश परिचय
ङ सांस्कृतिक विषय
च. वैज्ञानिक विषय
छ. सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक 'गाँधीजी के आश्रम में' के लेखन के लिए डॉ. प्रभाकर माचवे ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदी में 'पढ़ें और सीखें' पुस्तकमाला की यह योजना अब सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर अर्जुन देव के मार्ग-दर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डॉ० रामजन्म शर्मा, डॉ० सुरेश पांडेय, डॉ० हीरालाल बाछोतिया और डॉ० अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन में हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डॉ० रामदुलार शुक्ल सहयोग दे रहे हैं। योजना के संचालन में डॉ० बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

के. गोपालन
निदेशक

नई दिल्ली राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

विषय सूची

1

आश्रम

आपने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का चित्र या मूर्ति या उन पर बनी फिल्म देखी होगी। आप में से कुछ लोगों ने दिल्ली में राजघाट देखा होगा। वहीं एक स्मारक-संग्रहालय है। एक लाइब्रेरी है, जहाँ अनेक चित्र हैं। उस चित्र या मूर्ति में क्या विशेषता है?

क्या गाँधीजी बहुत ताकतवर या पहलवान थे? नहीं। उनका वज़न 113 पाउंड था। वे ऊँचे तगड़े नहीं थे। छोटे कद के नाजुक, चश्मा लगाने वाले, नकली दाँत लगाकर खाने वाले दुबले-पतले आदमी थे।

क्या वे शरीर से नहीं तो दिमाग से बहुत तेज थे? क्या वे बहुत पढ़े-लिखे थे? क्या उनकी बहुत-सी डिग्रियाँ थीं? क्या अच्छा भाषण देनेवाले आदमी थे? नहीं, वे मैट्रिक से आगे हिन्दुस्तान में नहीं पढ़े। न उन्होंने बी.ए., एम.ए. या और कोई डिग्री पाई। इंग्लैंड में जाकर, चार साल रहकर उन्होंने "बैरिस्टर" की डिग्री पाई। बाईस बरस की उम्र में वे लौट आए। वे अटक-अटक कर बोलते थे। और वह भी सीधा-सादा। उनकी भाषा में कोई उतार-चढ़ाव, नाटकीयता नहीं थी।

क्या वे बहुत अच्छे कपड़े पहनते थे? नहीं तो। जैसे स्वामी विवेकानंद का साफा या लोकमान्य तिलक की लाल पगड़ी या सुभाषचंद्र बोस की फौजी पोशाक जैसा उनका कोई विशेष

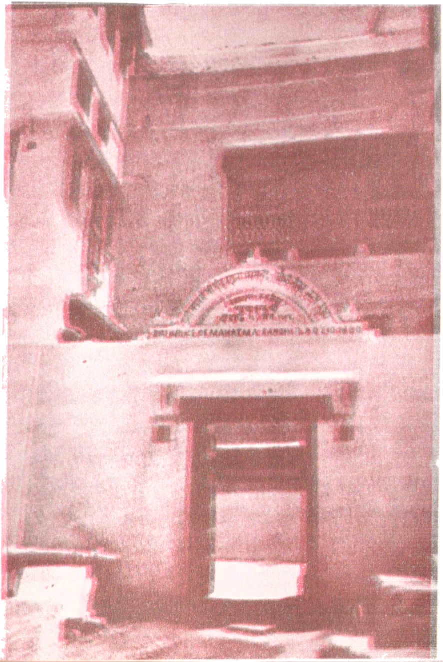
पहनावा नहीं था। शुरू में वे काठियावाड़ी पगड़ी पहनते थे। बाद में सफेद टोपी पहनने लगे जो बाद में गाँधी टोपी कहलाई। इंग्लैंड में जो हैट-सूट-टाई पहनता था, उसने कुर्ता पहनना भी छोड़ दिया। एक धोती, एक चादर-हाथ की कती-बुनी, यही उनकी पोशाक थी। मामूली किसान की तरह बापू रहते थे। एक-एक कर के बाहरी ताम-झाम उन्होंने छोड़ दिया। लोग उन्हें ''महात्मा'' या साधु कहने लगे।

क्या उनके पास बहुत पैसा था? यह ठीक है कि उनके पिता एक रियासत के दीवान थे। उनका पुश्तैनी बड़ा मकान था, जो आज भी राजकोट में है। वह राष्ट्रीय स्मारक बन गया है। पर उन्होंने अपने माँ-बाप से न बड़ी धन-दौलत, न जायदाद, न बैंक अकाउंट पाया। न अपनी मोटरकार थी, न कोई लंबा-चौड़ा सुख चैन का सामान था। वे धीरे-धीरे अपनी कमाई भी छोड़ते गए। चार बेटों के लिए वे कुछ नहीं छोड़ गए, सिवा अपने नाम के। जो कुछ वे जनता से चंदे के रूप में माँगकर जमा करते थे, वह धन उन्होंने जनता को वापिस दे दिया। वे मानते थे कि पैसे वाला पैसे को ''दरिद्रनारायण'' के लिए खर्च करे। वह सिर्फ उस पैसे का ''ट्रस्टी'' है। यानी सिर्फ अच्छे काम में, समाज की सेवा में उसे लगाने वाला, पूँजी का ''चौकीदार'', ''पूँजी-पति'' नहीं।

ऐसे गाँधी को हम किस एक जगह का कहें? जन्म अक्टूबर 1869 में गुजरात के सौराष्ट्र में, पढ़ाई हुई लन्दन में, वकालत करने गए दक्षिण अफ्रीका में। देश में 1915 में लौटे तो बिहार के चंपारन में आंदोलन शुरू किया। आश्रम बनाए साबरमती (गुजरात) और वर्धा के पास सेवाग्राम (महाराष्ट्र) में। रहते थे अक्सर जेल में। दिल्ली आए तो भंगी-कालोनी में रहे। एक चौथाई ज़िंदगी यात्राओं में बीती। वे देश के सब प्रांतों के सब धर्मों के सब भाषा बोलने वाले लोगों को साथ लेकर चले। सन् बीस, सन् तीस, सन् चालीस में बड़े-बड़े ''सत्याग्रह'' आंदोलन चलाए। कभी ''स्वदेशी'' कपड़े का आंदोलन, कभी नमक

आंदोलन, कभी "करो या मरो" या "भारत छोड़ो" आंदोलन। उनके त्याग से देश को स्वतंत्रता मिली। पर देश का बंटवारा भी इसी समय हुआ। 31 जनवरी 1948 को उन्हें एक सिरफिरे ने गोली मार दी। उन्हें सारा देश "राष्ट्रपिता" कहता था। यह उनकी राजनैतिक जीवन की कहानी कई बार सुनी और पढ़ी होगी। यहाँ पर हम उस मोहनदास करमचंद गाँधी नामक मनुष्य की बात कर रहे हैं, जिसमें अनेक विशेषताएँ थीं?

गाँधीजी का जन्म स्थान



वे विशेषताएँ थीं "चरित्र" या आत्मबल, निर्भयता, सत्य के लिए मरने-मिटने का आग्रह।

अब ऐसे विचित्र आदमी के बारे में, जो दीखने में इतने साधारण कि उनके लंबे कान देखकर सरोजिनी नायडू उन्हें "मिकी माउस" कहती थीं, और जो अपने आप को "दरिद्र नारायण" यानी गरीब-से-गरीब हिन्दुस्तानी जैसा मानता था, सब यह जानना चाहेंगे कि वह कैसे रहता था। क्या खाता-पीता था? उसके आसपास कैसे लोग रहते थे? उसका दिनभर का क्या कार्यक्रम था? इस छोटी सी किताब में हम उसी बात को बताएँगे।

गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में 1893 में एक वकील के नाते गए। वहाँ उन्होंने भारत से तमिल कुलियों की और मज़दूरों की हालत देखी। वहाँ के गोरे ब्रिटिश शासक उन काले लोगों को गुलामों की तरह मानते थे। बहुत बुरा सलूक करते थे। उन्हें हर साल तीन पाउंड टैक्स इस बात का देना पड़ता था कि मज़दूरी उन्हें मिले। उन्हें वोट देने का अधिकार नहीं था। हर भारतीय को अपने दोनों हाथों की दस अँगुलियों के निशान देने पड़ते थे। अगर वह ईसाई धर्म नहीं मानता है, तो उसकी शादी होने पर उसकी पत्नी को पत्नी नहीं माना जाता था। हर जगह उससे छुआछूत बरती जाती थी। गोरे लोग काले आदमियों को अपनी बस्ती में मकान नहीं देते थे। उन्हें शहर के अलग हिस्से में रहना पड़ता था। वे रेलगाड़ी में "काले आदमियों के लिए" अलग डिब्बों में ही प्रवास कर सकते थे। घोड़े की बग्गियों में भी वे गौरों के साथ नहीं बैठ सकते थे। वे गोरों के स्कूलों में पढ़ नहीं सकते थे। उनके होटल अलग थे। वे व्यापार नहीं कर सकते थे। उनकी दुकानें अलग थीं। वे अफ्रीका के नागरिक नहीं बन सकते थे। गाँधीजी को गोरे-काले का यह भेद बहुत बुरा लगा। उन्होंने इसके विरोध में अखबार निकाले। कानूनी लड़ाई की। काले लोगों का मोर्चा संगठित किया और पदयात्रा से अपनी बात मनवाई। गोरों के

बराबर कालों को रहने के स्थान और यातायात वाहन मिलने चाहिए। दोनों में मानवीय व्यवहार एक-सा होना चाहिए। यह सिद्ध करने के लिए गाँधीजी ने 1904 में "फीनिक्स" आश्रम, और 1910 में "तोलस्त्वोय फार्म" बनवाया। यह थी ऐसी बस्ती की शुरूआत।

1915 में भारत में लौटकर आने पर अहमदाबाद में 24 मई को बापू ने एक आश्रम बनाया। वह पहले साबरमती आश्रम और बाद में "सत्याग्रह आश्रम" कहलाया। वे जब दांडी में नमक सत्याग्रह के मोर्चे पर 1930 में, 79 साथियों के साथ निकले तो उन्होंने प्रण किया था कि "स्वराज्य लेकर ही मैं लौटूँगा"। फिर वे लौटकर वहाँ नहीं गए। जेल में चार वर्षों तक रहकर बाहर आए तो 1934-35 में वे वर्धा गए। जमनालाल बजाज ने वर्धा से सात मील दूर एक गाँव में, उन्हें ज़मीन दी। वहाँ उन्होंने सेवाग्राम आश्रम स्थापित किया।

अब यह "आश्रम" शब्द क्या है? इसका मतलब क्या है? हमने रामायण में ऋषि वशिष्ठ का आश्रम सुना है, जहाँ राम-लक्ष्मण पढ़ते थे। कृष्ण सांदीपनी आश्रम में पढ़ते थे। क्या यह पुराने ज़माने में "स्कूल" का दूसरा नाम था? उसे गुरुकुल भी कहते थे। पर जहाँ लोग पढ़ने ही नहीं जाते थे, शहर से दूर जंगल में, एकांत में, शांति से जाकर तप करते थे, उसे भी आश्रम कहते थे।

तो ऋषि-मुनियों के तपोवन या गुफाओं को काटकर उनमें ध्यान लगाने वाले बौद्ध भिक्षुओं के "चैत्य", या जैन मुनि जहाँ बारिश के चार महीने एक स्थान पर रहते थे वे "स्थानक" या "उपासरे" आश्रम ही थे। यह संस्कृत शब्द "श्रम" से बना है। जहाँ आदमी अपना काम खुद करे। जहाँ कोई नौकर-चाकर न हो। प्रकृति की गोद में जहाँ कुछ लोग, जो एक जैसे विचारों के हों, रहें। सिर्फ मौज नहीं उड़ाएँ। वे केवल स्काउटो के "कैंप" या सेना के "शिविर" की तरह थोड़े दिनों के लिए ही नहीं रहें। पर

यह करें कि अब हम घर-बार में रहना बहुत कर चुके, अब हम नौकरी व्यापार नहीं करेंगे। अपने आस-पास की ज़मीन को जोतकर जो अन्न मिले, आसपास के पेड़ों से, झाड़ियों से जो कंद-मूल मिलें, उन्हीं के सहारे रहकर हम सब मिलकर एक साथ समान भाव से जीवन बिताएँगे। सीधी-सादी झोपड़ियों में रहेंगे। गाँव के गरीब लोग जैसे रहते हैं, वैसे कम से कम चीज़ों से गुज़ारा करेंगे। अपना कपड़ा खुद कातेंगे-बुनेंगे। अपनी गाय बकरी पालकर उसका दूध, और अपनी झोपड़ी के आसपास साग-सब्जियाँ उगाएँगे। उनको पकाकर निर्वाह करेंगे। ऐसा विचार करके कुछ लोग एक साथ रहने लगें, तो वह आश्रम कहलाता है। अमेरिका में हेनरी डेविड थोरो ने "वानडेन" में ऐसा ही आश्रम बनाया था।

पुराने ज़माने में आश्रम धार्मिक होते थे। जैसे मंदिरों के साथ में संस्कृत, पढ़ने के आश्रम या विद्यालय थे। वैदिक लोगों की पाठशालाओं के आश्रम। बौद्धों के "बिहार, संघाराम" या मुसलमानों के "खानकाह", या ईसाइयों के "हर्मिटेज" आदि। बाद में सामाजिक सुधार के उद्देश्य से भारत में आश्रम बने, मिशनरियों "सेपिनरी", "डॉर्मिटेरी" के ढंग पर—"अनाथ आश्रम", "विधवा आश्रम", "अंध आश्रम", आदि। कोई भी ऐसी बस्ती, जो भीड़-भाड़ और शहर के शोर से दूर, एक ही आदर्श को लेकर बनाई जाए वह आश्रम है। जैसे "योगाश्रम"। या बीमारों के लिए "सैनिटोरियम" या प्राकृतिक चिकित्सालय आदि।

गाँधीजी के आश्रम में इन सब आश्रमों से अलग विशेषता थी :—

— वह सिर्फ एक धर्म के लोगों के लिए नहीं था। सबकी प्रार्थना वहाँ होती थी।

— वह सिर्फ रोगियों या विकलांगों के लिए नहीं था। चिकित्सालय भी वहाँ था।

- वह सिर्फ पढ़ने-पढ़ाने का स्थान नहीं था। तालीमी संघ का मुख्यालय भी वहाँ था।
- वह सिर्फ स्वयं सेवकों को या सत्याग्रहियों को प्रशिक्षित करने का स्थान नहीं था।
- वह सिर्फ बूढ़े लोगों का वृद्धाश्रम या विश्राम-स्थान नहीं था। वहाँ कई बड़े नेता जैसे खान अब्दुल गफ्फार खाँ राजेन्द्रप्रसाद, आचार्य नरेन्द्रदेव आदि विश्राम करने भी जाते थे।
- वह केवल एक बड़े आदमी का मुख्य कार्यालय और अतिथि शाला (गेस्ट हाउस) नहीं थी। वहाँ बापू के कई मेहमान, देशी और विदेशी, आकर रहते थे। गाँधीजी का आश्रम एक प्रयोगशाला थी, जैसा वे उसे कहते थे। विनोद में वे कहते थे कि सब तरह के विचित्र लोग उनके आसपास आया करते थे। उनके रोगों का प्राकृतिक उपचार वे स्वयं करते। एक दूसरे से राय रखने वाले लोग एक साथ कैसे रह सकते हैं, एक दूसरे को धीरज से सहन कैसे कर सकते हैं। यह सब आश्रम में बापू करते थे। तरह-तरह के सनकियों को जमा करने के कारण, वे विनोद से गुजराती में ''आश्रम'' को ''आशरम'' (लज्जा या शर्म की जगह) कहते थे।

गाँधी का आश्रम एक साथ उनका रहने का स्थान, कार्यालय, चिकित्सालय सामुदायिक रसोईघर (किचन, जिसे रसोड़ा कहते थे), सामूहिक श्रम की प्रयोगशाला थी। जैसे आश्रम के सब सदस्य सब काम खुद करते, जैसे आटा पीसना, सब्जी काटना, रसोई बनाना, पेड़ लगाना, दूध की डेयरी चलाना, टट्टियाँ साफ करना, मैला खेतों में खाद की तरह डालना, खेती करना, अपने कपड़े आप धोना, सिलना, इस्त्री करना, बाल काटना, एक दूसरे को पढ़ाना-सिखाना, पास के गाँव के लोगों की सेवा करना आदि बारी-बारी से करते थे। कोई काम न छोटा था न बड़ा। वहाँ रहने वाला कोई बड़ा नहीं था। न छोटा, न गोरा, न



आश्रम का एक दृश्य

काला। न हिन्दू न मुसलमान। ईश्वर में विश्वास करने वाला, और नहीं करने वाला। कोई भेद-भाव नहीं था। न अमीर, न गरीब। न बूढ़ा, न जवान, न स्त्री, न पुरुष, न मजबूत न कमजोर। कोई किसी से अपने आपको कम नहीं समझते थे। सब इन्सान बराबर थे। चाहे खूब पढ़ा-लिखा हो, चाहे अनपढ़। वहाँ बड़े-बड़े लाट और अफसर आएँ चाहे एकदम गाँव का किसान या दरिद्र मजदूर, सब को एक जैसा खाना, एक जैसा कपड़ा, एक जैसा रहने का स्थान, ओढ़ना-बिछाना, एक जैसा श्रम सब को करना पड़ता था। इसीलिए वह आश्रम कहलाया।

प्राचीनकाल में और आज भी हिन्दू धर्म में जीवन के चार चरणों को भी "आश्रम" कहते हैं :—

1. ब्रह्मचर्य आश्रम
2. गृहस्थ आश्रम
3. वानप्रस्थ आश्रम
4. सन्यास आश्रम

अगर एक मनुष्य का जीवन सौ वर्ष का है तो ये चारों हिस्से पच्चीस-पच्चीस वर्ष के हुए। अगर अस्सी आयु मान लें तो बीस-बीस वर्ष के। यानी पहले बीस साल तक लड़का हो या लड़की "ब्रह्मचर्य", यानी "ईश्वर" या अपना जो भी आदर्श हो उसको पाने में बिताएँ। इधर-उधर ध्यान न बँटने दें। ध्यान अगर प्राप्त करना हो तो पूरा ध्यान उसी में लगाएँ। खेल-कूद में पहला नंबर लाना हो तो उसी का अभ्यास करें। गाना सीखना हो, चित्र बनाना हो, विज्ञान में कुशलता हासिल करनी हो तो उसी में जुट जाएँ। इसलिए कहा गया कि बीस साल तक लड़के और लड़कियाँ अपने "ब्रह्म्" की सोचें, और किसी "भ्रम" में नहीं पड़ें। नशे न करें। समय नष्ट न करें। न एक दूसरे को अगले दस वर्षों में करने वाले कार्यों में जैसे घर-बार चलाना, शादी-ब्याह करना, बच्चों की देखभाल करना आदि "गृहस्थ" के कार्यों में अपने को डाल दें।

"गृह+स्थ" का मतलब है जो घर में रहता है। "घर" का मतलब ईंट-मिट्टी पत्थर लकड़ी के मकान से, किराये के अवास से नहीं है। संस्कृत में कहते हैं "गृहिणी-यू गृहमुच्चते"—गृहिणी से ही घर-घर कहलाता है। जिसका विवाह नहीं हुआ, घरवाली नहीं हुई, वह कैसा घरवाला? सो जिंदगी में दूसरा पड़ाव शादी-ब्याह करके बाल-बच्चे वाला होने का है। इसे गृहस्थ आश्रम कहते हैं।

चालीस-पचास की उम्र के बाद हिंदू परंपरा के हिसाब से, आदमी को घर-गृहस्थी की बातों से मन को मोड़कर, धन और पत्नी, पुत्र, पुत्रियों से ध्यान हटाकर वन की ओर देखना चाहिए। "वान + प्रस्थ" का अर्थ है वन की ओर जाने का इरादा करना। पुराने जमाने में, प्रवास पर जाते थे, तो "प्रस्थ" यानी साथ में जाने वाली चीजें दरवाजे के पास, प्रतीक के रूप में, रखते थे (जैसे लकड़ी, लोटा, डोरी, दाल-चावल, झोली गठरी, बिछौना-चादर आदि) इस तरह जीवन रूपी प्रवास में, अब घर की बातें नहीं

रखकर, घर के बाहर का ध्यान बढ़ाना चाहिए। अपने मोहल्ले, परिवेश, समाज, देश या राष्ट्र की सेवा का विचार करना चाहिए।

साठ वर्ष की आयु के बाद आदमी को अपने आप को ऐसा मानना चाहिए कि उसके पास जो भी चीजें हैं—धन या वस्तुएं मकान या जायदाद ध्यान या कौशल—वह सब उसका अपना नहीं है (इदं न मम)। वह समाज के लिए इन सब चीजों को समर्पित करें। ये सब चीजें उसके पास एक तरह से धरोहर, गिरवी रखी हुई चीजे हैं। वह उनका केवल विश्वस्त, ट्रस्टी या ''न्यासी'' है। ''न्यास'' का मतलब है कोई चीज बंधक या धरोहर की तरह रखना। ''सं'' का अर्थ है विशेष रूप से, समान भाव से, ''न्यास'' का विचार करना ही ''सन्यास'' है। आदर्श संन्यासी अपने स्वयं के लिए कुछ नहीं सोचता या जमा करता है। वह समाज के लिए समर्पित होता है।

गाँधीजी के अफ्रीका के आश्रम और भारत के आश्रम की स्थापना के वर्ष देखें तो उनकी उन्यासी वर्ष की पूरी आयु में पहला आश्रम 35 वर्ष की उम्र में, दूसरा 41 वर्ष की आयु में, और भारत में दोनों आश्रम साबरमती 46 वर्ष की उम्र में और अंतिम सेवाग्राम 66 वर्ष की उम्र में उन्होंने स्थापित किया। सेवाग्राम से ही 73 वर्ष की उम्र में आगा खां महल में नजरबंद होकर भी जेल में गए, सो वापिस नहीं लौटे। फिर वे दिल्ली की भंगी कालोनी में और कभी-कभी बिरलाभवन में भी रहते थे, या बंबई के ''मणि भवन'' में। इस तरह से हिन्दू आश्रम-व्यवस्था के अनुसार, उन्होंने बराबर अस्सी वर्षों को आयु के चार हिस्से करने पर, चालीस वर्ष के बाद से आश्रम जीवन शुरू किया और 60 वर्ष के बाद वे सन्यासी की तरह पूर्ण रूप से राष्ट्र को अर्पित हो गए। वे पूरे अस्सी वर्ष नहीं जी सके, चूँकि 1948 में उनकी हत्या कर दी गई। वे गोली के शिकार न होते तो शायद सौ वर्ष जीते। पूर्णायु यानी 125 वर्ष की उम्र तक जीने की इच्छा उनमें थी।

गाँधीजी की दिनचर्या

अब हम कल्पना करें कि सेवाग्राम आश्रम में, 1940 में, किसी एक दिन हम गाँधीजी के आश्रमवासियों के साथ हैं। हम यह देख रहे हैं कि गाँधीजी अपना दिन कैसे बिताते हैं। उनकी दिनचर्या क्या है?

आश्रम में कई लोग सवेरे साढ़े चार-पाँच बजे तक जग जाते हैं। आश्रम में नल नहीं है, न हर झोपड़ी में कोई बाथरूम है। इसलिए सब लोग मुँह-हाथ धोने के लिए कुएँ के पास बने सब के लिए नहाने का एक बरामदा जैसा ढंका हुआ स्थान है, वहाँ जाते हैं। वहाँ बाल्टी से पानी निकालते हैं। मुँह धोने का एक स्थान है जहाँ से नाली का पानी खेतों में चला जाता है। गाँव में खेत आश्रम से लगे हुए हैं। वहीं साग सब्जी की क्यारियाँ हैं, कुछ फलों के पेड़ लगे हैं जैसे अमरूद, पपीते आदि। यहीं एक तरफ छोटी-छोटी झोपड़ी जैसी टट्टियाँ बनी हुई हैं। नीचे गड्ढे खोदे गए हैं और मैला तथा मैला पानी गड्ढों में गिरता है। हर आदमी को उसमें सूखी मिट्टी डाल देनी होती है। जब वे गड्ढे या बाल्टियाँ मिट्टी से भर जाती हैं, तो बारी-बारी से हर आदमी को उस मिट्टी को उठाकर खेतों में खाद की तरह डाल देना पड़ता है। इस तरह से आश्रम में कोई भी चीज व्यर्थ नहीं जाती। गौशाला में गौएँ हैं। उनका गोबर भी इसी तरह से काम में लाया जाता है। गोबर से गैस

बनाने के यंत्र तब तक बनाए नहीं गए थे। उन पर प्रयोग हो रहे थे।



कार्यरत राष्ट्रपिता

गाँधीजी चार बजे उठ जाते हैं। उनकी उम्र को देखते हुए (तब गाँधी 71 वर्ष के थे) उनके लिए मुँह-हाथ धोने का और कमोड़ का स्थान उनकी कुटी के पास ही बना है। सवेरे कुल्ला करके, प्रातःर्विधि से निपटकर, गाँधीजी अपनी कुटी के बरामदे में ही प्रार्थना के लिए बैठ जाते हैं। एक छोटी-सी चटाई दीवार के

सहारे और पीठ टिकाने के लिए लकड़ी का फट्टा है। चटाई पर और पीठ के पीछे छोटी-छोटी पतली गद्दियाँ हैं। कई आश्रमवासी उस मुँह-अंधेरे में ही अपनी-अपनी लालटनें और प्रार्थना-पुस्तकें लेकर, छोटी चटाइयाँ लेकर आ जाते हैं। उनके आसपास बैठ जाते हैं। सवेरे की प्रार्थना आधे घंटे तक चलती है। इसमें आश्रम के सब सदस्य भाग नहीं लेते। शाम की प्रार्थना छह, साढ़े छह बजे होती है, उसमें पूरा आश्रम और बाहर के लोग भी आते हैं। वह बापू की कुटी के पीछे वाले छोटे-छोटे पत्थरों से बिछे आंगन जैसे खुले स्थान में होती है। वह घंटा, डेढ़ घंटा चलता है। उसमें अंत में बापू प्रवचन भी देते हैं। सवेरे की प्रार्थना में ये बातें तो अवश्य होती ही हैं—

1. उपनिषद के मंत्र
2. गीता के श्लोक
3. कुरान की आयतें
4. पारसी जरथुस्त्र गाथा
5. बौद्ध मंत्र
6. ईसाई प्रार्थना
7. रामचरितमानस का पाठ
8. किसी संत या भक्त कवि का कोई भजन

इसमें यह भाव है कि भारत में जितने लोग रहते हैं, उन सबके धर्मों को समान मानना उन धर्मों के मानने वालों को एक ही दृष्टि से देखना—कोई बड़ा नहीं, न कोई छोटा है। ईश्वर की सब संतानें हैं। सब भाई-भाई हैं। गाँधीजी मानते थे कि सब मनुष्य अपूर्ण हैं। पर वे पूर्ण हो सकते हैं। आत्मा परमात्मा बन सकती है। जब मनुष्य अधूरे हैं तो उनके बनाए धर्म भी अधूरे हैं। सब धर्मों में सुधार की, विकास की गुंजाइश है। इसीलिए किसी को भी उसके धर्म के कारण ऊँच-नीच नहीं मानना चाहिए। न किसी को दूसरे का तिरस्कार करना चाहिए। काले हों या गोरे,

गरीब हों या अमीर, हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई या सिख, ऊँचे वर्ण के हों या शूद्र वर्ण के (जिन्हें गाँधी जी "हरिजन" कहते थे)सब को एक जैसा मानना चाहिए। दूसरे के साथ वैसा ही सलूक करना चाहिए जैसा कोई चाहे कि अपने साथ हो।

इस प्रार्थना के अंत में आश्रम का कोई भाई या बहन जो गाना गा सकती थी, अंत में भजन गाता, फिर रामधुन होती, जिसमें सब साथ-साथ भाग लेते। एक व्यक्ति जो गाना गाता, कहता-"रघुपतिराघव राजा राम", तो बाकी सब लोग उसकी पंक्ति को दुहराते। इसे "रामधुन" कहते थे।

प्रार्थना आधा घंटा हो जाने के बाद गाँधीजी नियम से रोज घूमने जाते। सवेरे और शाम को कम से कम आधा घंटा घूमने के लिए जाना उनका नित्य नियम था। सेवाग्राम आश्रम से एक किलोमीटर भी नहीं होगा। सेवाग्राम नाम का देहात था। देहात की झोपड़ियों में रहने वाले लोगों का हल पूछतें। उनमें कोई बीमार होता तो उसकी दवा-दारु कराते। उन्हें सफाई से रहना सिखाते। जिन्हें काम नहीं था, उन बेरोजगार या बूढ़े स्त्री-पुरुषों को चरखा चलाकर सूत कातना और उस पर कढ़ाई करना सिखाते। बच्चों के लिए तालीमी संघ की शाला थी। उसमें जाने के लिए कहते। उन्हें जुआ, शराब पीना, मार-पीट, झगड़ा-टंटा करना आदि सब बुराइयों से बचने को कहते। आश्रम में गाँधीजी के भक्त दूर-दूर से कई फलों की टोकरियाँ खजूर की पेटियाँ भेजते रहते थे। उनमें सबसे पहले बीमारों को, फिर बच्चों को फल बाँटे जाते। बचे रहते तो आश्रम के लोगों में वे बाँटे जाते।

सवेरे गाँव का चक्कर लगाकर बापू सात बजे तक लौटते, तो आश्रम से लगा हुआ एक बीमारों के लिए दवाखाना था, वहाँ जाते। अक्सर गाँधीजी के यहाँ कोई न कोई बीमार, राजनैतिक कार्यकर्त्ता, या आश्रम का ही कोई रोगी वहाँ होता। तो वे उस पर प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग करते। प्राकृतिक चिकित्सा का मतलब है कि कोई दवा की गोलियाँ या चूर्ण या सुई लेना नहीं।

परंतु हवा, पानी भाप, मिट्टी, बर्फ, धूप सेंक, उपवास, साग-सब्जी, दूध-छाछ आदि के सहारे रोग को अच्छा करना। गाँधीजी यह मानते थे कि अक्सर रोग अपने ही खान-पान, रहन-सहन की नियमित आदतें न रहने से, होते हैं। हम ही अपने अनजाने रोग पाल लेते हैं। हमें अपना खुद का डॉक्टर होना चाहिए। और इस तरह से प्रकृति के सहारे हम अपने आपको स्वस्थ और नीरोग बना सकते हैं।

यह सब काम हो जाने पर गाँधीजी स्नान घर में चले जाते थे। वह मालिश और शरीर की स्वच्छता, अपने कपड़े खुद धोने में विश्वास करते थे। इस तरह से आठ बजे तक वे तैयार हो जाते। अपनी कुटी में आने से पहले वे सब के साथ "रसोड़े" (किचन) में नाश्ता लेते। एक कटोरे में बकरी का दूध और खजूर, यही उनका नाश्ता था। कभी दलिया, कभी आश्रम में ही बनाई जाने वाली चोकर सहित गेहूँ के आटे की पावरोटी (होल स्वीट ब्रेड) के दो टुकड़े। गाँधीजी नमक का प्रयोग नहीं करते थे। चीनी के बदले वे गुड़, खास तौर पर ताड़-गुड़ लेते। जब दूध नहीं होता छांछ भी लेते। कभी-कभी गर्म उबालकर गन्ने का रस पीते थे। वे नकली दाँत लगाकर चबा-चबाकर खाते और नाश्ते में उन्हें बीस मिनट से ऊपर समय लगता।

अब गाँधीजी तैयार होकर अपनी कुटी में आ जाते। साढ़े तीन घंटे वे अपनी कुटी में ही बैठकर आने वाले लोगों से मिलते, चिट्ठियों के जवाब देते, आवश्यक पुस्तकें पढ़ते, "हरिजन" साप्ताहिक के लिए लेख लिखते, या आश्रमवासियों की समस्याओं को सुलझाते। उनकी कुटी ही उनका कार्यालय थी। वे जमीन पर ही चटाई बिछाकर उस पर एक छोटी-सी पतली गद्दी पर बैठते। और लोग भी उनसे जमीन पर आकर ही बैठकर मिलते। कभी किसी के लिए मुड्ढा या जरूरत हो तो बेंत की कुर्सी आ जाती। वर्ना लिखने का काम भी वे एक छोटे से लकड़ी के डेस्क पर ही करते। तब बाल-पाईंट नहीं थे। न हिन्दुस्तान में

होते थे गलत है। गाँधीजी जीवन के हर पहलू के बारे में सोचते थे। वे सब का सुधार चाहते थे। सब तरफ से प्रगति चाहते थे। उनके मत को ''सर्वोदय'' कहते हैं।

बारह बजे दोपहर को घंटी बजते ही सब आश्रमवासी रसोड़े के बरामदे में भोजन के लिए जमा हो जाते। एक लंबी चटाई या छोटे-छोटे आसन लेकर हर आदमी या औरत अपने-अपने स्थान पर थाली-कटोरी चम्मच लेकर बैठ जाते। बराबर साढ़े बारह बजे सब लोग एक के सामने एक दो पंक्तियों में बैठ जाते। रसोड़े से जिनकी उस दिन ड्यूटी या पारी होती, वे लोग चावल, डबल रोटी के टुकड़े, दाल उबली हुई सब्जी, दही दूध ले आते और सब को बराबर परोसा जाता फिर प्रार्थना होती। एक बार ही अन्न दे दिया जाता था। नमक का प्रयोग आश्रम में नहीं होता था, न मिर्च मसालों का। हरी मिर्च, प्याज, लहसन अलग से जिसे लेना हो लेते। गाँधीजी नमक बिल्कुल नहीं खाते थे, पिसा हुआ लहसन वे काम में लाते। कच्ची हरी सब्जी वे चबा-चबाकर खाते। भोजन के साथ हरे पत्ते जरूर दिए जाते। दही या छाछ का प्रयोग होता था। शुद्ध शाकाहारी भोजन था। घी या तेल भी बहुत कम खाया जाता था। आश्रम में ही एक तेल घानी थी, उसका तेल काम में लाया जाता। बची हुई तिलहन या सरकी की खली गौशाला में गौओं को खिलाई जाती थी। सादा, सात्विक, स्वास्थ्य के लिए जरूरी आहार होता। गाँधीजी सदा सब के साथ बैठकर वही भोजन लेते, जो औरों को दिया जाता था। सोमवार को गाँधीजी मौन रखते थे। और दिनों पर भोजन के समय चर्चा होती। परिवार के सदस्यों की तरह सब के साथ हंसी-मजाक होता। कम से कम आधा घंटा भोजन में लग जाता। भोजन के समय कोई भी आदमी किसी को ज्यादा खाने के लिए नहीं कहता था। थाली में झूठा नहीं छोड़ा जाता था। जो अन्न पसंद नहीं हो वह नहीं लिया जाता था। और सब अपनी अपनी थाली कटोरी चम्मच उठाकर मांजने ले जाते। कुँए पर जहाँ टंकी में पानी भरा रहता, अपने

बर्तन सब अपने हाथों से माँजते। गाँधीजी भी ऐसा ही करते थे। खाना खाने के बड़े बर्तन बारी-बारी से सब सदस्य माँजते थे। आश्रम में कोई नौकर नहीं था। सब लोग सब काम करते। कोई काम हल्का नहीं था, न कोई बड़ा। हर आदमी अपने कमरे में झाड़ू करता। हर आदमी बागवानी करता। पानी भरने का काम करता। अपने कपड़े खुद धोता यानी उस साठ-सत्तर आश्रमवासियों की बस्ती में न कोई रसोइया था, न माली, न झाड़ूवाला। न धोबी, न बढ़ई, न चमार, न दर्जी, न भंगी। ऐसे आश्रम कम होते हैं जहाँ मनुष्य को स्वावलंबन मेहनत या अपना काम खुद करने का पाठ पढ़ाया जाता हो। वहाँ स्त्री, पुरुष सब बराबर भाव से रहते थे।

गाँधीजी भोजन के बाद अपनी कुटी में चले जाते। पंद्रह मिनट सोते थे। दोपहर का विश्राम वे आवश्यक समझते थे। परंतु उनकी विशेषता यह थी कि अगर दस मिनट सोना है तो बराबर ग्यारहवें मिनट पर वह उठ जाते थे। बीस मिनट सोना है तो बीस मिनट के बाद उनकी नींद खुल जाती थी। उन्होंने अपनी नींद पर अधिकार कर लिया था। अपने खाने-पीने पर भी उनका नियंत्रण था। जीभ पर कंट्रोल रखना वे जरूरी समझते थे। आश्रम के ग्यारह व्रतों में एक ''अ-स्वाद'' भी था। बहुत अधिक, या केवल मौज के लिए खाते जाना, वे ठीक नहीं समझते थे। जितना शरीर के लिए जरूरी है उतना ही खाना और उतना ही सोना चाहिए, ऐसा वे मानते थे।

फिर दोपहर को वे नियमित चरखा कातना व अपना आवश्यक लिखने का काम करते। ''हरिजन साप्ताहिक के लिए बराबर-आठ पेज हर हफ्ते लिखना (जिसमें कुछ लेख कभी-कभी उनके सेक्रेटरी महादेव देसाई या प्यारे लाल लिखते) उनका क्रम था। ''हरिजन'' से पहले ''यंग-इंडिया'' था। उससे पहले दक्षिण अफ्रीका में ''इंडियन डोमिनियन'' था। जीवन में वे लगातार हर दिन कुछ न कुछ लिखते रहे। इसीलिए अब ''गाँधीजी के समग्र



गाँधीजी ने चर्खे को स्वाधीनता आंदोलन का प्रतीक बनाया

वाङ्मय'' के बड़े-बड़े पांच-पांच सौ पृष्ठों के अस्सी खंड छपकर भी उनका लिखा हुआ, उनके पत्र, भाषण आदि, सब कुछ अभी पूरा छप नहीं पाया है। यह काम उनके मरने के बाद गाँधी-जन्म-शताब्दी द्वारा 1969 में शुरू हुआ, और अभी तक चल रहा है। दोपहर को भी कुछ मिलने वाले आ जाते। किसी न किसी संस्था की सभा होती। भोजन करने के बाद शाम को 5.30 बजे, नियम से गाँधीजी एक घंटा टहलने के लिए निकल पड़ते। धूप हो या जाड़ा, वे बराबर आश्रम से निकलकर, दो मील दूरी पर, सेवाग्राम-वर्धा मार्ग पर एक छोटी सी टेकरी है, वहाँ तक जाकर

लौट आते। साथ में आश्रमवासी या अतिथि भी चलते। कई विषयों की चर्चा होती। एक लकड़ी के सहारे वे तेज-तेज कदमों से चलते थे। वर्षा के दिनों में बरामदें में ही टहलते। पर अपना नित्य नियम नहीं छोड़ते थे।

शाम को साढ़े छह बजे जाड़ों में, गर्मियों में सात बजे, आश्रम के बीच के खुले अहाते में, प्रार्थना की घंटी बजती थी और घंटाभर तक प्रार्थना होती थी। इस प्रार्थना में सवेरे की प्रार्थना से अधिक लंबा, सब धर्मों से पवित्र ग्रंथों से कई हिस्सों का पाठ होता—हिंदू, मुस्लिम, ईसाई,पारसी, बौद्ध, जैन, सिख आदि सबके ग्रंथों से। कबीर, रैदास, नानक, नामदेव, तुकाराम, सूर, तुलसी, मीरा, नरसीमेहता, अमीरखुसरो, नज़ीर अकबराबादी, रवींद्रनाथ ठाकुर के भजनों का एक संग्रह गांधीजी ने बनवाया था, उसी में से पाठ होता। कोई विशेष अतिथि आए तो उनका प्रवचन होता। कोई धार्मिक उत्सव या तिथि हो तो उस पर विशेष संगीत या प्रार्थना होती। अंत में गाँधीजी आश्रम की, या देश-विदेश की किसी समस्या पर अपने विचार सबके सामने रखते। इसे प्रार्थना-प्रवचन कहते थे। किसी भाई-बहन की विशेष समस्या या प्रश्न का उत्तर भी वे देते। हर बात को वे सार्वजनिक बनाकर चर्चा करने में विश्वास करते थे। उनका अपना निजी कुछ नहीं था न मकान, न बैंक अकाउंट। परिवार भी उन्होंने राष्ट्रार्पित कर दिया था। उनकी पत्नी कस्तूरबा उनके साथ सुख-दुख में, जेल में या आश्रम में एक सदस्य की तरह रहती थीं। चार पुत्र अपने-अपने व्यवसाय में लग गए और गृहस्थ बन गए थे। आश्रम में जो गृहस्थी वाले थे, यानी पत्नी बाल बच्चों वाले सदस्य वे अलग झोंपड़ियों में आश्रम से बाहर रहते थे। पर आश्रम के सदस्य वे ही होते थे, जिनको परिवार बनकर वहाँ रहना नहीं होता था। अक्सर अविवाहित, या परिवार से अलग, स्वतंत्र लोग ही वहाँ रहते थे।

प्रार्थना के बाद साढ़े सात या आठ बजे सब लोग सोने के लिए



प्रार्थना सभा की ओर

अक्सर खुले में, आसमान के नीचे तखतपर, खटिया पर, या जैसे गाँधीजी ने अपने लिए बनाया था ऐसे एक ओर से सिराहने, इतने ऊँचे लकड़ी के पहिये मे जुड़े, लंबे लकड़ी के फट्टे पर, चटाई पर

सोते थे। बहुत कम लोग गादी, तकिये या रजाइयों का प्रयोग करते। जाड़े में सूत की चादर या कंबल काफी होता। सोना भी एक सिपाही की तरह था। सब पुरुषों को एक साथ, और स्त्रियों को दूर दूसरी तरफ, इसी तरह होता था। बंद दरवाजे के पीछे कोई आश्रम का सदस्य नहीं सोता था। वर्षा में सब बरामदे में सोते थे।

यह गांधीजी के एक दिन के कार्यक्रम की रूपरेखा इसलिए दी है कि इकहतहर वर्ष की आयु में भी वे कितने कर्मठ, अनुशासित और नियंत्रित जीवन बिताते थे, यह पता लगे। कैसे वे बच्चों के साथ बहुत खेलते, हंसी-मजाक भी बड़ा शुद्ध करते थे, परंतु उन्हें कभी मौज उड़ाते, आनंद या मनोरंजन में खाली समय काटते, या किसी भी तरह आलस या व्यसन में अपनी शक्ति खोते नहीं देखा गया।

गीता में लिखा है ''प्रमादालस्य निद्राभि :''—यानि मनुष्य के समय और शक्ति के तीन शत्रु हैं—प्रमाद (निकम्मापन गफलत, भूल से व्यर्थ काम करना, आलस और नींद)। जैसे गाँधी खुद थे, वैसे ही अपने आश्रम के अनुयायियों से आत्म नियंत्रण चाहते थे। वे संयम को बहुत महत्व देते थे।

जिस मनुष्य के जीवन में कोई आदर्श होता है, उसपर वह बराबर डटा रहता है, वह कभी थकता नहीं। ''बोर'' नहीं होता। उसे अपने भीतर से प्रेरणा मिलती रहती है। वह बराबर आगे बढ़ता रहता है। बापू ऐसे ही अनथक, श्रद्धालु, सत्य मार्ग के पथिक थे।

आश्रमवासी

सन् 40 से 42 के बीच सेवाग्राम में रहने वाले लोगों में से कुछ आश्रमवासियों के बारे में यहाँ परिचय दिया जा रहा है।

प्यारे लाल जी

गाँधीजी के दो प्रमुख सेक्रेटरी थे, महादेव दसाई और प्यारे लाल (नैयर)। जब तक गाँधीजी जीवित थे, प्यारे लाल जी ने शादी नहीं की। आश्रम में ही रहते थे। बहुत पढ़ते थे। उन्हें पंजाबी, उर्दू, हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत और अंग्रेजी भाषा आती थी। उनकी मातृभाषा पंजाबी थी। वे गाँधीजी के "हरिजन" पत्र के सहसंपादक थे। वे बहुत मोटा काँच का चश्मा पहनते थे। वे प्रार्थना में भाग नहीं लेते थे। बड़ा पैट्रोमैक्स जलाकर, लिखने पढ़ने में लगे रहते थे। उन्होंने गाँधीजी की बड़ी जीवनी लिखने का संकल्प किया था। "दि लास्ट फेज़" (पूर्णाहुति) नाम से अंग्रेजी में गाँधीजी के जीवन के अंतिम वर्षों पर उन्होंने दो बड़े ग्रंथ अंग्रेजी में लिखे। उन्होंने अब्दुल गफ्फार खाँ पर जीवनी परक पुस्तक भी लिखी। वे बहुत कम बोलते थे पर गाँधीजी के अत्यंत विश्वासपात्र थे। उन्हीं की बहन थी डा० सुशीला नैयर जो सेवाग्राम में दवाखाने और चिकित्सालय की प्रमुख डाक्टरनी थीं। प्यारे लाल जी बोलते समय हकलाते थे, पर उनके पास गाँधीजी के निजी कागज पत्रों का बड़ा प्रामाणिक संग्रह था।

आश्रम टूटने पर, गाँधीजी की मृत्यु के बाद वे दिल्ली आ गए थे। सुजानसिंह पार्क में रहते थे। शंकर मार्केट, दिल्ली में "नवजीवन कार्यालय" की किताबों की दुकान पर ही उनका कार्यालय था। वहाँ वे गाँधीजी की जीवनी लिखने में मग्न थे।

डा० सुशीला नैयर

पंजाब के राष्ट्रवादी नैयर परिवार की सुशीला जी गाँधीजी की व्यक्तिगत चिकित्सक (पर्सनल डाक्टर) थीं। उन्होंने सेवाग्राम में एक डिस्पेंसरी और बाद में लैबोरेटरी भी चलाई, जहाँ से गांववालों का और गरीबों का मुफ्त उपचार किया जाता था। अब एक बड़ा दवाखाना और चिकित्सा शिक्षाकेंद्र सेवाग्राम में ही उस स्थान पर बन गया है। बाद में स्वराज्य आने पर वे केंद्रीय शासन में स्वास्थ्य मंत्री भी नियुक्त हुईं। झांसी से वे सांसद चुनी गई थीं। अब भी वे राष्ट्रीय सेवा कार्यों में और रचनात्मक प्रवृतियों में बहुत भाग लेती हैं।

भनसाली जी

गुजरात के एक विद्वान प्रोफेसर जो बाद में हठयोग की ओर आकृष्ट हुए, पर गाँधी के कहने पर आश्रम में रहने लगे। एक बार परिवार में अपनी भाभी को कुछ गलत शब्द गुस्से में कहने पर अपने ओंठ तांबे के तार से सी लिए थे। भनसाली भाई कठोर शरीर-नियंत्रण में विश्वास करते थे। कई दिनों तक सिर्फ नीम के पत्ते ही खाकर रहे। कई दिनों तक सिर्फ कद्दू ही खाते थे। कई दिनों तक वे दूध को फाड़कर बाकी बने रहने वाले पानी (व्हे) को ही पीकर रहते थे। बाद में गत महायुद्ध के समय आष्टी चिमूर में अंग्रेज सिपाहियों ने भारतीय स्त्रियों पर अत्याचार किया। इसके विरोध में वायसराय की कौंसिल के सदस्य लोकनायक माधव श्री हरि अणे की देहली पर दिल्ली में छयालीस दिन तक उपवास करके एक आश्चर्यजनक रेकार्ड कायम किया। वे आश्रम में सबको सब तरह के विषय पढ़ाया करते थे, गणित, अंग्रेजी, साहित्य, संस्कृत, दर्शन आदि। अक्सर वे आश्रम में बगीचों में पानी देते, रसोड़े में

काम करते, और बच्चों के साथ खेलते। उनका अट्टहास प्रसिद्ध था। बाद में देश को स्वतंत्रता मिलने पर नागपुर के पास एक आश्रम में रहते थे। उन्होंने स्वतंत्रता सेनानी की पेन्शन नहीं ली।

किशोरीलाल घ. मश्रूवाला

ये आश्रम के सबसे बड़े दार्शनिक थे। किशोरीलाल घनश्याम मश्रूवाला गुजराती भाषा के प्रसिद्ध निबंधकार थे। उन्होंने स्वामी नारायण पंथ, वैष्णव धर्म, जैन तर्क का बड़ा अध्ययन किया था। वे गाँधीजी के कई नैतिक मामलों में सलाहकार थे। वे बीमार रहते थे। पर उनका विचारक रूप ऐसा था कि गाँधीजी उनको बहुत मानते थे। कोई भी नई योजना बनानी हो तो गाँधीजी उनसे चर्चा करते। ''रचनात्मक कार्यक्रम'' नाम से गाँधीजी ने एक पुस्तिका सत्याग्रहियों के लिए लिखी थी। उसमें मश्रूवाला का बड़ा योगदान था। वे अहिंसा मानने वाले, सौम्य, शांत चित्त, विद्वान व्यक्ति थे। ग्राम केंद्रित अर्थ-व्यवस्था यानी शहरों के बजाय गांवों से भारत का सुधार करने के गाँधीजी के विचार में मश्रूवाला का पूर्ण विश्वास था।

मौरिस फ्रीडयन (स्वामी भारतानंद)

ये पोलैंड के निवासी थे। युद्ध के विरोधी होने से वे भारत में मैसूर सरकार के एक ऊँचे इंजीनियरी के पद को छोड़कर आश्रम मे रहने लगे थे। उन्होंने अपना नाम स्वामी भारतानंद रख लिया था। ''हरे राम'' कहते हुए वे आश्रम में घूमते थे। गाँधी ने उन्हें अपने प्रयोग करने के लिए एक झोंपड़ी में छोटी सी प्रयोगशाला खोल दी थी। मौरिस फ्रीडयन यह देखना चाहते थे कि लोहे का उपयोग न करके सिर्फ लकड़ी का बैलगाड़ी का पहिया कैसे बन सकता है? उस गाड़ी की गति कैसे बढ़ाई जा सकती है, और बैल के कंधों पर जुंए का वजन कैसे कम किया जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद वे पोलैंड के शरणार्थियों की सहायता का शिविर चलाते थे।

बलवंत सिंह

हरियाणा राजस्थान की सीमा के कृषि-विशेषज्ञ आश्रम में गाँधीजी के आश्रम में खेती देखते थे। खेती में स्वावलंबन बढ़ाने के लिए वे कई तरह के ग्रामोद्योग बढ़ाने के पक्ष में थे। वे कृत्रिम खनिज उर्वरक डालकर मिट्टी की उपज बढ़ाने के विरोध में थे। वे चाहते थे कि पुराने ढंग से गोबर और वनस्पति की खाद से खेती का उत्पादन बढ़ाया जाए। गांवों के पर्यावरण के रक्षण के लिए वे जंगल काटने के विरोधी थे। वे जात-पांत के विरोधी थे।

कृष्ण चंद्र

अलवर से गणित के एम.ए. दुबले-पतले आश्रमवासी "शरीर-श्रम" में बहुत विश्वास करते थे। रसोड़ा और उनसे संबंधित स्टोअर, बर्तन भंडार आदि की व्यवस्था करते थे। बापू के खाद्य और आहार के प्रयोगों में सबसे अग्रणी थे। कुछ दिन तक आश्रम में मूंगफली पर जोर था, और बाद में कुछ दिनों तक सोयाबीन पर। उन सबमें वे स्वयम् आगे बढ़कर अपने ऊपर प्रयोग करते थे।

यशवंत महादेव पारनेरकर

मध्यप्रदेश उज्जैन में जन्में, पूना से कृषि-स्नातक बनकर ग्वालियर राज्य की सरकारी नौकरी छोड़कर साबरमती आश्रम में ही गाँधीजी के साथ हो गए थे। गाँधीजी की गौशाला के वे प्रमुख संचालक थे। सेवाग्राम आश्रम में भी दूध का उत्पादन बढ़ाना, गौओं के वंश और नस्ल में सुधार, अहिंसक चमड़े (मृत पशु की खाल) का उपयोग आदि कई कामों में उन्होंने विशेष कार्य किया। स्वराज्य के बाद वे मध्यप्रदेश सरकार के कृषि-सलाहकार और उत्तर प्रदेश में पशुलोक (ऋषिकेश) में बड़े कृषि उद्यान और पशु-केंद्र के प्रमुख निर्माता बने। (उन्हीं की इकलोती कन्या के साथ हमारा विवाह सेवाग्राम आश्रम में ही 8 नवंबर 1940 को हुआ। गाँधीजी ओर कस्तूरबा इस विवाह के मुख्य प्रेरक थे और संयोजक गुरुजन थे।)

केशो भाई आनन्दभाई

दो जापानी भिक्षु जो फूजी गुरुजी के शिष्य थे, पिछले महायुद्ध के समय, आश्रम में रहने आ गए थे। वे अपने ही देश में बनी वस्तुओं का व्यवहार करते थे। बिना आईने के वे अपने सिर, दाढ़ी मूँछ, भौंहों का भी उस्तरे से सफाचट मुंडन कर लेते थे। निचिरेन संप्रदाय का मंत्र मुँह से बोलते हुए, एक छोटे से ढोल पर ढम-ढम करते हुए वे आश्रम की प्रदक्षिणा किया करते, सबेरे और शाम। शाम की प्रार्थना में घुटने टेक कर गाँधीजी के सामने प्रार्थना करते थे। जब गाँधीजी को पता चला कि वे गाँधी को बुद्ध का अवतार मान कर ऐसा करते हैं। तो उन्होंने उन्हें मना कर दिया। आश्रम की प्रार्थना में आरंभ में दो मिनट का मौन उन्होंने ही शुरू कराया। तमाम युद्धों के शिकार निर्दोष निरीह, निरपराध लोगों की आत्मा की शांति के लिए यह मौन रखा जाता था। इन्हीं भिक्षुओं ने बाद में राजगृह में शांति स्तूप बनवाया जिसकी स्थापना फूजी गुरुजी के हाथों हुई।

राजकुमारी अमृत कौर

मूलतः पटियाला राजघराने की सिख महिला, जो ईसाई हो गई थीं। गाँधीजी के कार्यक्रमों से आकर्षित होकर सेवाग्राम में आकर रहने लगी थीं। वे रियासती मामलों की जानकार थीं और गाँधीजी को वहाँ पर चलने वाले राष्ट्रीय आंदोलनों, प्रजामंडलों, छोटे-बड़े राजाओं, नवाबों और राज-पुत्रों की राष्ट्रीय भावना और ब्रिटिश स्वामी भक्ति के बारे में खोज-खबर रखती थीं। स्वराज्य के बाद वे भारत सरकार में, केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री और उत्तर प्रदेश की राज्यपाल भी रहीं। वे अंग्रेजी की अच्छी लेखिका और वक्ता भी थीं। आश्रम में आने वाले विदेशी अतिथियों के स्वागत-सत्कार और आतिथ्य को भी वे देखती थीं।

पं० परचुरे शास्त्री

आप महाराष्ट्र के संस्कृत के विद्वान थे। उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था इसलिए वाराणसी में जाकर अपने प्राण गंगा में विसर्जित

करने जाने वाले थे। इससे पहले वे गाँधीजी को प्रणाम करने के लिए आए। गाँधीजी ने कहा कि हिंदू धर्म के अनुसार आत्महत्या पाप है। गाँधी ने कहा कि आश्रम में ही रहें और सबको संस्कृत सिखाएँ। उनके लिए एक अलग कुटी बनवा दी थी। गाँधीजी स्वयम् उनके शरीर की मालिश करते और सेवा करते थे। जब राजकुमारी अमृत कौर ने कहा कि कोढ़ी को साथ रखना ठीक नहीं। तो गाँधीजी ने राजकुमारी को उनके पास रोज सवेरे एक घंटे संस्कृत पढ़ने के लिए जाने का आदेश दिया।

सरदार पृथ्वीसिंह

यह भी पंजाब के एक क्रांतिकारी थे। वे चलती हुई ट्रेन में हाथों में सींकचे होते हुए कूद पड़े थे, (टायलेट की कांच की खिड़की तोड़कर) फिर वे कई मील भागते हुए गए। और स्वामी राव नाम से वे रूप और भेस बदलकर सौराष्ट्र में व्यायामशाला चलाते रहे और पहलवानी सिखाते रहे। तेरह बरस तक उन्होंने ब्रिटिश पुलिस और जलूसों से अपने आपको छिपाकर रखा। गत महायुद्ध ने उन्हें बचा लिया नहीं तो बहुत लंबी सजा होती। महायुद्ध के समय सरदार पृथ्वीसिंह भारतीय साम्यवादी दल के साथ फासिस्ट विरोधी जनयुद्ध के समर्थक हो गए। गाँधीजी से अलग होने पर भी वे गाँधीजी के भक्त बने रहे। स्वराज्य के बाद पहले गुजरात में एक व्यायामशाला खोली बाद में चंडीगढ़ में आकर वे विवाहित होकर सपरिवार रहने लगे। स्वतंत्रता सेनानियों में बाबा पृथ्वीसिंह सबसे पुराने व्यक्ति हैं। नब्बे से ऊपर उनकी आयु है, पर अब भी वे क्रिकेट खेलते हैं, लंबी दौड़ स्पर्धा में भाग लेते हैं।

सुरेन्द्र मोशाय

सुरेन्द्र नामक यह एक बंगाली क्रांतिकारी थे, जो आश्रम में आकर रहने लगे थे। उनके बारे में यह ख्याति थी कि एक लंबे बांस के सहारे वे झोंपड़ी पर से कूद कर निकल जाते थे। वे

अंडमान भी गए थे काले पानी पर। हम जब सेवाग्राम में थे, चंद्रसिंह गढ़वाली और सुरेन्द्र मोशाय की बड़ी मैत्री थी। उनसे क्रांतिकारियों की कहानी सुनने में बड़ा आनंद आता था। सुरेन्द्र मोशाय को कड़ी मशक्कत या सश्रम कारावास की सज़ा ब्रिटिश राज्य में मिली थी। इसलिए आश्रम में सवेरे गेहूं पीसकर हाथ की चक्की से आटा बनाने के काम में वे सबसे अव्वल थे। जेल में भी उन्होंने चक्की पीसने का काम किया था।

आशादेवी आर्यनायकम्

बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर अधिकारी की बेटी, कलकत्ते की लेडी राजू मुकर्जी की बहन, बंगाली सेवाभावी महिला थीं आशादेवी। उन्होंने सिंहल के आर्यनायकम् नामक शिक्षा-शास्त्री से विवाह किया। आशादेवी ब्राह्मोसमाजी थीं, अपनी बेटी मितुया को उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा महंत आनंद कौसल्यायन से दिलाई थी। दोनों पति-पत्नी आश्रम के पास ही बुनियादी तालीमी संघ (बेसिक-एजूकेशन) की शाला चलाते थे। उन्हीं के पास गाँधी के पास आने वाली विदेशी पुस्तकों का संग्रहालय भी था। आशादेवी का संबंध शांति निकेतन से भी रहा था। आश्रम की प्रार्थना-सभा में वे रवींद्र-संगीत गाती थीं। स्वराज्य के बाद उन्होंने राजेंद्रप्रसाद को ''भारत रत्न' उपाधि न लेने के लिए लिखा और स्वयम् भी ''पद्मभूषण'' उपाधि लेने से इंकार किया। सेवाग्राम में ही, स्वराज्य के बाद, उनका देहावसान हुआ।

मीराबेन

इंग्लैंड के एक नौसेनाधिकारी की कन्या मिस मेरी स्लेड गाँधीजी के इंग्लैंड-प्रवास (1931) से ही उनकी भक्त हो गई थीं, और भारत में आ गई थीं। सेवाग्राम में पहली कुटी उन्होंने बनाई और भारतीय कपड़े पहनकर रहने लगीं। बाद में उन्होंने सलवार-कमीज पहन लिया था। गाँव वालों की सेवा करने में जुट गईं। उनकी दूसरी विदेशी साथिन सरलादेवी अलमोडे में साक्षरता का

कार्य करती थीं। गाँधी और वायसराय के बीच मीराबेन, सी.एफ. एंड्रयूज़ जैसे ब्रिटिश गाँधी भक्तों ने बड़ा दूत-कार्य किया। स्वराज्य के बाद कुछ वर्ष पशुलोक, ऋषिकेश में बापू नगर बसाकर, मीराबेन वापिस आस्ट्रिया चली गईं। उन्होंने अंग्रेजी में 'एक आत्मा की तीर्थ यात्रा' नामक आत्मकथा लिखी है।

महादेव देसाई

गाँधी के सबसे बड़े अनुयायी, सचिव और जिन्होंने पांच खंडों में गाँधी के साथ रहने की अपनी पूरी डायरी गुजराती में लिखी है, महादेव देसाई थे। वे साबरमती में ही गाँधीजी के साथ सन् ''30 से आ गए थे और सन् '42 में आगा खाँ पैलेस में गाँधीजी के साथ कारागृह में रहते हुए उनकी मृत्यु हुई। जीवन के अंत तक वे गाँधीजी की छाया की तरह अनुयायी रहे। ''यंग इंडिया'' ''नवजीवन'', ''हरिजन'' आदि गाँधीजी के पत्रों के वे संपादक थे। उन्होंने गाँधीजी की गुजराती आश्रमकथा ''सत्यना प्रयोगो'' का अंग्रेजी अनुवाद किया। गाँधीजी के गीता-काव्य ''अनासक्तियोग'' का भी अंग्रेजी में अनुवाद उन्होंने किया। वे गुजराती, अंग्रेजी, हिंदी के बहुत अच्छे पत्रकार, निबंध-लेखक और साहित्यकार थे। उनके पुत्र नारायण देसाई आज भी गाँधी-कार्यक्रमों से जुड़े सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं।

घनानंद कोसांबी

बौद्ध धर्म के उद्भट विद्वान धर्मानंद कोंकण के रहने वाले थे। कई वर्षों तक वे गाँधी विद्यापीठ में अध्यापक रहे। बाद में आपका गाँधीजी से मतभेद हो गया। वे अमरीका में हारवर्ड विश्वविद्यालय में ''विसुद्धिमग्ग'' नामक पालिग्रंथ के संपादन के लिए गए। आपने बंबई में ''बहुजन विहार'' नामक बौद्धमंदिर भी बनवाया। आप के जीवन के अंतिम दिन सेवाग्राम में बीते। वहीं उनका निर्वाण हुआ। विख्यात वैज्ञानिक डा. डी.डी. कोसंबी उनके पुत्र थे। सेवाग्राम में ही उन्होंने अपनी अंतिम रचना

"भगवान बुद्ध" (मराठी नाटक) लिखी। उसका हिंदी में अनुवाद हमें करने को दिया। वे बड़े निस्पृह और प्रगतिशील विचारों के शांति वादी थे।

काकासाहब कालेलकर

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर नामक कोकणी मातृभाषा-भाषी, गुजराती के महान साहित्यकार, पहले शांतिनिकेतन में पढ़ाते थे। वहाँ से गाँधीजी उन्हें गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में ले आए। वे साबरमती और सेवाग्राम में गाँधीजी के अत्यंत निकट के भाषा विशेषज्ञ, लेखक, पत्रकार, कोषकार थे। शिक्षाविद् काकासाहब हिंदुस्तानी प्रचार सभा के संस्थापक और मुख्य प्रचारक थे। गाँधीजी के प्रमुख भाष्यकार स्वराज्य के बाद राज्यसभा के संसद सदस्य, पिछड़े वर्ग कमीशन के प्रमुख संयोजक नियुक्त हुए। आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें—प्रवास वर्णन, आत्मकथा, गुजराती, हिंदुस्तानी, जोड़णी कोश, भारत की नदियों की कहानी "सप्तसरिता" और जीवन-लीला, और "जीवन-व्यवस्था" जैसे निबंध संग्रह हैं। वे विश्व-प्रवासी, शांतिवादी, गाँधीजी के अनन्य भक्त थे। आपकी जन्मशताब्दी गत वर्ष मनाई गई। श्री विष्णु प्रभाकर, से हिन्दी में, उनके जीवन और कृतित्व पर पुस्तिका लिखवाई गई है।

जी. रामचंद्रन

तमिलनाडु के प्रो. रामचन्द्रन हिंदुस्तानी तालीमी संघ में आर्यनायकम् जी के सहयोगी थे। बुनियादी तालीम के प्रयोग में उन्होंने गाँधीजी के कमाई के साथ पढ़ाई के कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार किया। रामचंद्रन का विवाह डा. सौदरम्मा के साथ सेवाग्राम में ही हुआ, जो बाद में केंद्रीय शिक्षा राज्यमंत्री बनी। रामचंद्रन जी ने स्वराज्य के बाद मदुरै के पास गाँधीग्राम में गाँधीजी के आदर्शों पर चलनेवाला विश्वविद्यालय चलाया। वे विख्यात शिक्षा शास्त्री हैं। आपको "पद्मविभूषण" तीन वर्ष

पर्व दिया गया। आपने गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों का दक्षिण भारत में बड़ा प्रचार किया।

वसंतराव कर्णिक

बड़ौदा (गुजरात) से आए श्री कर्णिक ने बहुत छोटी आयु में ही सत्याग्रह में भाग लिया और कई बार जेल गए। साबरमती तथा सेवाग्राम आश्रम में आप गाँधीजी के गोसेवा कार्यक्रम से जुड़े हुए थे। पारलेरकर के बाद आपने गौशाला निर्माण, और दुग्ध-उत्पादन कार्यक्रम में बड़ा काम किया। ताड़गुड़ उत्पादन, मधुमक्खी पालन आदि कार्यक्रम में गजानन्दराव नाईक के साथ भी कार्य किया। स्वराज्य के बाद आप भरतपुर में कृषि और गौसेवा संघ समन्वित ग्राम-विकास योजना में, और बाद में पशुलोक, ऋषिकेश में भी रचनात्मक कार्य करते रहे। आपको स्वाधीनता संग्राम सैनिक की पेन्शन मिलती है। अब आप अस्सी वर्ष की आयु में भी स्वावलंबी हैं।

बालजी भाई देसाई

गांधीजी ने जब "यंग इंडिया" निकाला, तो उसके पहले अंक में अंग्रेजी की गलतियां निकालनेवाले प्रोफेसर बालजी भाई गाँधीजी के प्रिय व्यक्ति हो गए। बालजी भाई आश्रम में आकर रहा करते थे। उनके पुत्र थे महेंद्र देसाई, जो बाद में "टाइम्स ऑफ इंडिया" के संपादकीय विभाग में और जनसंचार माध्यम संस्थान के संचालक रहे। वे सूचना प्रसारण मंत्रालय में भी रहे। बालजी भाई बहुत शांत और पढ़ाकू स्वभाव के थे। परन्तु देखा यह गया कि ऐसे बौद्धिक लोग गाँधीजी के आश्रम की ओर बहुत आकर्षित होते रहे वहां आकर वे अपना गर्व भूल जाते और शारीरिक श्रम भी करते रहते थे।

अमृतलाल नानावती

पूना में "पंचवटी" में रहने वाले जस्टिस नानावटी परिवार के अमृतलाल काका साहब कालेलकर की हिंदुस्तानी प्रचार सभा

के आजीवन सदस्य और कार्यकर्त्ता रहे। वे भी प्रार्थना सभा में नियमित रूप से भजन गाते थे। शाम की प्रार्थना के समय वे अवश्य उपस्थित रहते।

अयतु स्सलाम

सेवाग्राम आश्रम में मुस्लिम भाई सदस्य के नाते बहुत अधिक नहीं थे। तीन-चार बहनें वहां जरूर रहती थीं। उनमें बीबी अयतु स्सलाम, जो दुबली-पतली काली सांवली सी थीं, सब कामों में हिस्सा बंटाती थीं। उन्होंने सन बयालीस के आन्दोलन में भी भाग लिया था। वे गाँव वालों की सेवा करतीं। चरखा कातना, बुनना आदि खादी-ग्रामोद्योग के कार्य में वे सक्रिय थीं।

रैहाना तैयबजी

इन्हें भी मैंने आश्रम में देखा था। बाद में वे काका साहिब कालेलकर की सन्निधि में सरोज बहन के साथ अक्सर रहती थीं। उनके चेहरे पर सफेद दाग थे, पलकें भी सफेद थीं। वे प्रार्थना के समय उपस्थित रहतीं।

जोहराबेन चावड़ा

सीमांत के पठान परिवार की यह बहन गुजरात में रहती थीं। पहले वे बुर्का पहनती थीं। पर जब हमने इन्हें सेवाग्राम में देखा तो उन्होंने परदा करना छोड़ दिया था। खादी की साड़ी पहनती थीं और बहुत अच्छी गुजराती बोलती थीं। ये भी ग्राम-सेविका का कार्य करती थीं। बाद में आपका विवाह अकबर भाई चावड़ा से हुआ। वे कुछ वर्षों के लिए राजनीति में भी रहे। वे बहुत हंसमुख थीं। अयतु स्सलाम के साथ इन्होंने भी सन् 47 के दंगों में पीड़ित बहनों के पुनर्वास में बहुत कार्य किया।

कनु गाँधी

गाँधीजी के निकट संबंधी आश्रम में रहते थे। वे फोटोग्राफी बहुत अच्छी करते थे। बाद में उनके लिए एक डार्क रूम भी बना दिया गया था। वे बहुत अच्छा गाते भी थे। प्रार्थना-सभा में वे

भजन कहते। गाँधीजी के पत्र-व्यवहार में महादेव देसाई के साथ वे मदद करते। बाद में जब सेवाग्राम में टेलीफोन बापू की कुटी से दूर तक झोपड़ी में लगाया गया तो उसे भी देखते रहते। गांधीजी आधुनिक पश्चिमी सुविधाओं–बिजली, टेलीफोन, नल आदि गांवों में जब तक गरीबों तक नहीं पहुँच जाता तब तक अपने लिए ये चीजें रखना विलास समझते थे।

आभा चैटर्जी

बंगाल की आभा और वीणा नाम की दो चट्टोपाध्याय वंश की बहनें आश्रम में रहती थीं। अक्सर ये बहनें कार्यकर्त्ताओं के जेल जाने से, मातापिता में से किसी एक के न रहने से आश्रम में रहती थीं। वे जमनालाल बजाज द्वारा स्थापित महिलाश्रम, वर्धा में शिक्षा ग्रहण करती थीं। कस्तूरबा गांधी की कोई बेटी नहीं थी। वे लड़कियों को अपने पास रखतीं। स्वराज्य के बाद वीणा का विवाह प्यारेलाल जी से और आभा का कनू गाँधी के साथ हुआ।

प्रभाकर तथा कुंदर दिवाण

दिवाण नामक महाराष्ट्र परिवार के ये दोनों भाई आश्रम में ही रहते थे। प्रभाकर दिवाण मराठी के कवि और लेखक थे। बाद में कुंदर दिवाण कुष्ठ आश्रम में काम करते थे। इस काम में बहुत कम लोग रूचि लेते थे। तब तक बाबा आमटे आगे नहीं आए थे। शिवाजी राव पटवर्धन का एक कुष्ठ आश्रम विदर्भ में था। अच्छे पढ़े-लिखे लोग गाँधीजी की पुकार पर अपने शिक्षालय, वकालत, डाक्टरी आदि के निजी काम छोड़कर तब सार्वजनिक सेवा में जुट गए थे। उन्हें मानव-सेवा का यह काम आदर्श लगता था।

प्रभाकरन् जी

दक्षिण भारत के प्रभाकरन् जी और सेवाग्राम का हरी नामक एक व्यक्ति दो हरिजन कार्यकर्त्ता और बालक आश्रम में ही रहते थे। प्रभाकरन् जी अस्पताल से जुड़े थे। हरी आश्रम में डाक बांटने का काम करता था।

चिमनलाल भाई

चिमनलाल भाई और गोमती बेन सारे आश्रम के निरीक्षण और सर्वेक्षण का काम करते थे। वे गाँधीजी के आश्रम से जाने के बाद भी बहुत वर्षों तक यही काम करते रहे। वे ही हिसाब-किताब भी रखते थे। अतिथियों की व्यवस्था भी देखते थे। आश्रम में सब तरह के लोग आते रहते थे और अनुशासन सबके लिए समान था। इन सब का ध्यान चिमनभाई रखते थे। ये मृदुभाषी और व्यवहार कुशल थे।

भूतपूर्व मंत्री सालवे की बहिन शांतिशीला कई दिनों तक आश्रम में तालीमी संघ से जुड़ी। वे संगीतज्ञ थीं। प्रार्थना सभाओं में वे भजन गाया करती थीं।

उत्तर प्रदेश के एक सिपाही सी.आई.डी. में काम करते थे। वे भी आश्रम में रहने लगे। गाँधीजी को पता लगा। पर उन्होंने मना नहीं किया। गाँधीजी ने कहा ''मैं किसी भी आदमी को यहां आने से मना नहीं करूंगा। जब तक वह यहां के नियमों का पालन करे'', वह रह सकता है। लोगों ने बताया कि ये तो ब्रिटिश सरकार के जासूस हैं, गुप्तचर हैं। फिर भी वे बोले—''हमारे यहां कुछ भी गुप्त नहीं है। मैं कानून तोड़ता भी हूं तो पहले वायसराय को लिखकर सूचना भेजता हूं। उन्हें रहने दो। वे यहां की रिपोर्ट ही तो देंगे। देने दो।'' गाँधीजी ने मना नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि गाँधीजी की प्रार्थना में रोज वे रामायण पाठ करते। एक दिन उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी, और वे भी गाँधीजी के आंदोलन में सहभागी हो गए।

इतने लोगों का छोटा-छोटा परिचय इसलिए दिया गया कि पाठक जान सकें कि गाँधी के आश्रम में कैसे-कैसे लोग एक साथ रहते थे। अब ऊपर का नामावली से पाँच-छह लोग ही सिर्फ जीवित हैं, जैसे सुशीला नैयर (दिल्ली), वसंतराव कर्णिक (जयपुर), आभागाँधी (पोरबंदर), बाबा पृथ्वीसिंह (चंडीगढ़),

जी. रामचन्द्रन (मद्रास)। उनमें से कई बहुत वृद्ध हो गए हैं। शेष सब इतिहास की हस्तियाँ बन गई हैं। यानी अब वे इस दुनिया में नहीं रहे।

4

रचनात्मक कार्यक्रम

आश्रम के हर कार्यकर्ता को किसी न किसी रचनात्मक प्रवृत्ति में काम करना जरूरी था। 1914 में गाँधीजी ने "रचनात्मक कार्यक्रम" नामक पुस्तिका गुजराती में लिखी। इसी का हिंदी, अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ। लाखों प्रतियाँ इसकी बिकीं। यह पुस्तिका गाँधीजी की योजना का सार है। जो लोग गाँधीजी को हवाई किले बनाने वाला, संत, महात्मा और हमेशा ऐसी बातें सोचने वाला जो जीवन में उतारी नहीं जा सकतीं, मानते हैं, उनके लिए इतना कहना काफी है कि हर काम को वह व्यवहार की कसौटी पर कसकर ही लोगों के सामने रखते थे। स्वयम् वैसा करते थे, बाद में उपदेश देते थे।

उस पुस्तिका की भूमिका, जो गए महायुद्ध के समय लिखी गई थी, वे कहते हैं—

"रचनात्मक कार्यक्रम, दूसरे शब्दों में कहें तो सत्य और अहिंसा के साधनों से की गई पूर्ण स्वराज्य की रचना है।

हिंसा और उसके लिए विरोध असत्य के साधनों से जो राष्ट्र बने, और महायुद्धों में पैसा, मनुष्य और सत्य को खोकर वे क्या पा रहे हैं, इतिहास में इसका दुःखद दर्शन हमें मिलता आ रहा है।"

जात-पाँत, नाते-रिश्ते, रंग या धर्म, भाषा या प्रदेश के भेद

मनुष्य और मनुष्य के बीच में न मानना यही सच्चे पूर्ण स्वराज्य का आधार है। गाँधीजी चाहते थे कि उनके चौदह सूत्रों के रचनात्मक कार्यक्रम में से कोई भी अपनी इच्छा से एक ही कार्यक्रम चुन ले, और उस पर अमल करे। इसी तरह से शांति और समाधान मिलेगा।

जो भी समझौता या इकरारनामा, दोनों पक्षों में शंका या संदेह रखकर, या दिल में हिंसा रखकर किया जाता है, वह टिकनेवाला हो ही नहीं सकता। अब इस कार्यक्रम के एक-एक मुद्दे को लेकर गाँधीजी क्या चाहते थे, यह देखें :

1. सांप्रदायिक एकता

इसका अर्थ राजनीति नहीं है। ऊपर से थोपी हुई एकता नहीं है। यह सुविधा से दो पक्षों ने अपनाई हुई ऊपरी-ऊपरी एकता नहीं। इसका अर्थ है हार्दिक एकता। अपना धर्म कोई भी हो—हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, यहूदी, सिख, वगैरह—उसका सच्चा प्रतिनिधि पहले बनें। और सब धर्मों के प्रति समान आदर रखें। हर देश भक्त को, राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने वाले को, अपने देश में बसने वाले हर आदमी को मित्र और भाई समझना चाहिए। इसका धार्मिक विश्वास कोई भी हो, वह और आप बराबर हैं। जितना आदर आपको अपने धर्म के लिए है, उतना ही दूसरे व्यक्ति को अपने धर्म के लिए भी हो सकता है। यह सदा ध्यान में रखें।

तब रेलवे स्टेशनों पर "हिंदू पानी" या "मुस्लिम पानी", या "हिंदू चाय", "मुस्लिम चाय" ऐसी अलग-अलग दुकानें हुआ करती थीं। रेलवे ब्रिटिश राज्य के शासन में थीं। उन्होंने ऐसा भेदभाव बना रखा था। गाँधीजी कहते हैं कि जैसे स्कूल अस्पताल, कालेज, नौकरियाँ सब के लिए बराबर हैं, वैसे ही पीने का पानी भी है। वैसे ही बर्तन कपड़े या मकान अलग-अलग नहीं होने चाहिए। यूरोप में ईसाई देशों में यहूदियों को "घेटटों" में

रहना पड़ता है। कई जगह चीनियों की अलग बस्तियाँ ''चाईनाटाउन'' हैं। काले और गोरे लोगों की रहने की जगहें और ईसाई गिरजाघर भी अलग-अलग हैं। भारत में तो अंग्रेज राज्य में गोरों के क्लबों और होटलों में भारतीय (काले आदमी) जा तक नहीं सकते थे। ऐसी छुआछूत गाँधीजी को पसंद नहीं थी। इससे देश की एकता टटती है।

गाँधीजी का कहना था कि ऐसे अलग-अलग धर्मों के विरोध से ही विदेशी राज्य को यह मौका मिला कि विधान-सभाओं में उन्होंने अलग-अलग धर्मों और जातियों के लिए अलग-अलग सीटें रखीं। और यों भेदभाव बढ़ता रहा। इस तरह से समाज में कई नकली ''वर्ग'' बना दिए गए। इस तरह के बँटवारे से बचना है तो सब धर्मों को समान मानना होगा और यह कहना होगा। वह धर्म, धर्म ही नहीं है जो दूसरे धर्म को मानने वाले आदमी को आदमी नहीं समझता है, या बराबरी का नहीं मानता है।

2. छुआछूत को नहीं मानना

हिंदू धर्म पर यह काला दाग और शाप है कि हम कुछ भाइयों को अछूत मानते हैं। स्वयम् हिंदू धर्म को सशक्त बनाने के लिए यह कार्यक्रम बहुत अच्छा है। अगर हमने अपने ही शरीर के एक अंग को अछूत मान लिया, तो उसकी जो हालत होगी, वही इन ''हरिजन'' कहलाने वाली छोटी जातियों की हुई है। ''सनातनी'' और अन्य ऐसे दो भेद हमने हिंदुओं में ही बना डाले हैं, जो ठीक नहीं हैं। शास्त्र पुराण आदि पुरानी किताबों में, हमारे भक्त और संत कवियों में ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं, जिनका जन्म ''शूद्र''कहे जाने वाले वर्ण में हुआ। पर आज उन्होंने अपनी बानी और करनी से समाज और साहित्य में अमर पद पाया। इसके सैकड़ों उदाहरण हैं।'' हर एक हिंदू को हरिजन बंधुओं को अपनाना चाहिए। उनके सुखदुख में भाग लेना चाहिए। उन्हें

मित्र बनाना चाहिए। जब तक ऐसा भद-भाव रहेगा, सच्चा स्वराज्य नहीं आएगा।"

3. शराब बंदी

सन् 1920 से, कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम में इस बात पर ज़ोर दिया। यह पूरी तरह अमल में नहीं लाया गया। दूसरे सामाजिक और नैतिक सुधारों में कांग्रेसियों ने जितना उत्साह दिखाया, उतना इस काम में नहीं दिखाया। आज देश में लाखों करोड़ों लोग शराब, अफीम, नशीली चीजों के सेवन के शिकार हैं। बच्चे और युवक भी नशे लेते हैं। इनको इन बुरी लतों से छुड़ाए बिना, हम "स्वराज्य" क्या प्राप्त करेंगे? डाक्टरों को इस काम में अधिक से अधिक मदद करनी चाहिए। वे हमारे नागरिकों और ग्रामीणों के स्वास्थ्य के रक्षक हैं। उन्हें बताना चाहिए कि शराब या नशे आदि बुरी आदतों का शरीर पर कितना बुरा असर होता है।

समाज को व्यसन मुक्त बनाने में स्त्रियों और विद्यार्थियों को सब से अधिक काम करना चाहिए। वे भारतीय घरों की संस्कृति को टिकाये रखने वाली माताएँ और बहिनें हैं। विद्यार्थी हमारे देश का भविष्य हैं।

कांग्रेस को चाहिए कि वह ऐसी समितियाँ और आराम-घर चलाएँ जहाँ थके माँदे मज़दूर आकर सस्ते दामों में नाश्ता ले सकें। स्वास्थ्य और स्वच्छता का वहाँ ध्यान रखा जाए। वहाँ वे मनपसंद खेल भी खेल सकें, जो आनंद दें। अहिंसा से स्वराज्य लेने की बात जैसे नई है, वैसे ही जीवन के हर पहलू में नए आदर्श बनाने होंगे। जिन जातियों में या प्रथाओं में शराब, जुआ आदि प्रतिष्ठा की बात मानी जाती रही, उन्हें भी इस पर फिर से विचार करना होगा। अपने अज्ञान और अधीरता के कारण ये लोग अपनी मुक्ति कर नहीं पा रहे हैं। वे भूल रहे हैं कि आरोग्यदायक

मुक्ति हमारे भीतर से ही मिलेगी, न कि ये सब काम सरकार के भरोसे छोड़ देने से।

4. खादी

कई लोग यह मानते हैं कि हाथ-कता, हाथ-बुना कपड़ा पहनना जरूरी नहीं। गाँधीजी लिखते हैं कि ''कई लोग समझते हैं कि मैं नाव उलटे प्रवाह में बहा रहा हूँ। और देश की नैया को डुबा दूँगा। मैं देश को पुराने अंधकार युग में ले जा रहा हूँ। खादी, मेरे मत से, देश की आर्थिक स्वतंत्रता और समता की सूचक है। कहावत है कि पेड़ की परीक्षा उसके फल से होती है। खादी का अर्थ सिर्फ हाथ-कता, हाथ-बुना कपड़ा पहनना ही नहीं है। उसके साथ कई चीज़ें जुड़ी हुई हैं। खादी का अर्थ है सर्वव्यापी स्वदेशी भावना। हर एक चीज़ जो हम काम में लाएँ वह देश में ही बनी हुई हो, खास तौर से गाँव में बनी हुई हो। आज जो प्रवाह चल रहा है—शहर से गाँव की ओर वस्तुओं और नए-नए फैशनों—पहनावों को ले जाना—उसे मैं उलटाना चाहता हूँ। आज हिंदुस्तान और ब्रिटेन के छह शहर सात लाख ग्रामवासियों को चूस रहे हैं। मेरे कार्यक्रम से ग्रामवासी स्वावलंबी बनेंगे, और शहर की सेवा भी कर सकेंगे।''

गाँधीजी चाहते थे कि गाँव और शहर में रहनेवाले हिंदुस्तानियों में अंतर न बढ़े। दोनों के मानस में बहुत बड़ा परिवर्तन आना चाहिए। भारत की शक्ति गाँवों में बसती है। अहिंसा को आज भारतवासी कमज़ोरी मानते हैं। वह वैसी नहीं है। वही भारत की सबसे बड़ी शक्ति और देन है। खादी गाँधी के मत से भारत की एकता और अहिंसा की निशानी है। जवाहरलाल नेहरू की भाषा में खादी ''भारतीय स्वतंत्रता की वर्दी है''।

खादी सिर्फ कपड़े के मामलें में भारत के गाँवों को स्वावलंबी बनाना नहीं है। परंतु यह एक शुरुआत है सब बातों में स्वावलंबी

बनने की। 1940 में 13451 से अधिक गाँवों में रहने वाले 275145 ग्रामीणों में (जिनमें 19545 हरिजन और 57375 मुसलमान थे)। कातने, पींजने, बुनने के काम से कुल रु. 34,85,609 कमाते थे। इससे पता चलता है कि इस काम में आगे बढ़ने की कितनी ज़रूरत है। आज ग्रामवासियों को पशुओं की तरह बुरी ज़िंदगी गुज़ारनी पड़ रही है। वे निराश बन गए हैं। पर खादी उनके जीवन में उज्ज्वल प्रकाश ला सकती है। धीरे-धीरे गाँववाले अपने उत्पादन को चरखासंघ को बेचकर जो पैसा मिलेगा, उससे और चीज़ें खरीद सकते हैं। गाँव में खादी के सहकारी भंडार खोल सकते हैं।

5. दूसरे ग्रामोद्योग

इन उद्योगों में अकेले कातने जैसी बात नहीं, लेकिन अनेक लोगों के सहयोग और श्रम की ज़रूरत होगी। हाथ-कुटा चावल या हाथ से पिसा आटा और खाने की चीजें, साबुन, गुड़, कागज़, दियासलाई, तेलधानी, चर्मालय से बनने वाली चीज़े आदि ग्रामोद्योगों में बनी चीजों के उपयोग पर ज़ोर देना चाहिए। इसी से हमारी बड़े यंत्रों की गुलामी कम होगी। यदि भूख, दरिद्रता, बेकारी से भारत को मुक्त होना है, तो गाँधीजी के विचार से, परिश्रम से लाए जाने वाले यंत्रों को कम करना होगा। इस दिशा में ग्रामोद्योग सबसे उपयोगी होंगे। वे हमें सिखाएँगे कि हम अपना काम खुद करें।

6. ग्राम-सफाई

आज हमारे पढ़े-लिखे लोग शरीर-श्रम को हल्का काम समझते हैं। उनसे बचते हैं। बुद्धिमान वर्ग (ऊँची जात) और सफाई करने वाले वर्ग का अंतर मिटाना ज़रूरी है। गाँवों में इस भेदभाव के कारण गंदगी के ढेर पड़े रहते हैं, गाँव घूरे में बदल रहे हैं। हमें सच्चा राष्ट्र भक्त बनना है, तो हमारे गाँव साफ होने

ही चाहिए। यह काम कुछ थोड़े सफ़ाई मजदूरों पर सौंप देने से, या यह सफाई का काम किसी खास जाति का है यह मानने से नहीं होगा। हर एक भारतवासी को गाँववाले भाई के सुख दुख में सहभागी होना चाहिए। हम लोग शरीर पर पानी के लोटे डालकर समझते हैं कि हम साफ हो गए। पर असल में जिस कुएँ, तालाब या नदी के पास हम नहाते हैं, उस जलाशय का पानी भी हमें साफ रखना चाहिए। "मैं इसे बहुत बड़ा दुर्गुण मानता हूँ कि हमारी पवित्र नदियों के किनारे हम कितने अपवित्र काम करते हैं। उसी गंदगी से रोग पैदा होते हैं, उससे सब को नुकसान पहुँचता है। इस दुर्गुण के लिए हम सब जिम्मेदार हैं।"

7. नई तालीम या बुनियादी शिक्षा

हरि पुरा में कांग्रेस के अधिवेशन के समय इस नए विषय को उठाया गया। "हिन्दुस्तानी तालीमी (शिक्षा) संघ" की स्थापना की गई। इस शिक्षा का मतलब था ग्रामवासी बालक को एक आदर्श ग्रामीण बनाना। यदि ये बालक अच्छे होंगे तो भावी भारत की नींव पक्की बनेगी। आज तो जो प्राथमिक शिक्षा दी जा रही है, गाँधीजी के शब्दों में, "वह एक फार्ज है। क्योंकि उस शिक्षा पद्धति में न गाँव की, न शहर की ज़रूरतों का ख्याल रखा जाता है। नई शिक्षा जो 1937 में गाँधीजी ने चलाई उसमें हर विद्यार्थी के शरीर और बुद्धि का एक साथ विकास जरूरी था। ग्रामीण और नागरिक बच्चों और तरुणों में समानता बढ़ाने का आदर्श था। सबसे बड़ी बात यह थी कि हर बालक का अपनी भूमि और आसपास की प्रकृति के परिवेश के प्रति प्रेम और आदर, उन्हें देवता की तरह मानने में रहा है। कई देवता कई पशुओं पक्षियों को अपना वाहन और संगी बनाते हैं। कई वृक्ष जो दवा जैसे हैं, काटे नहीं जाते थे। यों नई शिक्षा में हर भारतवासी अपने ऊपर विश्वास ही नहीं बढ़ाता था, उसमें देश प्रेम की आपसे आप बढता था।

8. प्रौढ़ शिक्षा

शिक्षा केवल बच्चों, किशोरों और तरूणों को ही ज़रूरी नहीं। साक्षरता और ज्ञान तो सब उम्र के नागरिकों के लिए ज़रूरी है। गँवों में इतना घोर अज्ञान है कि वे अपने गाँव को ही "घर" कहते हैं, और दूसरे किसी गाँव में जाएँ तो उसे पराया मानते हैं। अपने गाँव या प्रदेश को "देस" मानने वालों के मन व्यापक बनाने के लिए जरूरी है कि हर बड़े आदमी और औरत को भी शिक्षा दी जाए। उन्हें सिखाना चाहिए कि विदेशी गुलामी से क्या-क्या नुकसान हमारे जीवन में हुआ है। इस तरह की शिक्षा से ही विदेशियों के लिए डर कम होगा और आत्म-गौरव बढ़ेगा। अभी तो वे अज्ञान के कारण निर्बल होते जा रहे हैं। वे नगरवासियों के आगे अपने को हीन मानते हैं।

इस तरह की शिक्षा गाँव और शहर दोनों में जरूरी है। मौखिक शिक्षा के द्वारा उन्हें इतिहास और राजनीति का सही ज्ञान दिलाना चाहिए। इसी तरह से वे अपने नागरिक अधिकारों और सामाजिक न्याय के बारे में सचेत होंगे। स्वराज्य और स्वतंत्रता का सच्चा अर्थ तभी उनकी समझ में आ सकेगा। गाँधीजी ने बार-बार कहा था कि जो संघर्ष करना हो वह साफ-साफ, खुले ढंग से करना चाहिए। अहिंसा मे गुप्तता नहीं चल सकेगी। मौखिक शिक्षा के साथ उन्हें अक्षर ज्ञान भी होना चाहिए। इस शिक्षा को, प्रौढ़ों के लिए, जैसे कम समय में और ज्यादा कारगर और असरवाली बनाई जा सके, इसके लिए गाँधीजी ने तब जानकारों की एक समिति गठित करने का सुझाव दिया था। किन लोगों को कौन-कौन सा खास ज्ञान ज़रूरी है, यह तय करना होगा। आज बच्चों के दिमाग पर भी बहुत सा बेकार ज्ञान लादा जा रहा है।

9. स्त्रियों की उन्नति

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम में "स्त्रियों की उन्नति" भी थी। सत्याग्रह के आंदोलन ने बहुत कम समय में, स्त्रियों को

अंधेरे में से बाहर निकालकर प्रकाश में लाने में मदद की। वे अब जेल में जाने और लाठियाँ खाने, जुलूस निकालने और धरना देने, प्रचार करने और व्याख्यान देने में अपने को पुरुषों के बराबर समझने लगीं। यह गाँधीजी की बहुत बड़ी देन थी कि अपने अहिंसक आंदोलन में उन्होंने स्त्री और पुरुषों को बराबरी का दर्जा दिया।

अब तक जितने कानून बनाए गए, जो धर्मग्रंथ बने, वे सब पुरुषों ने बनाए थे। उनके बनाने में स्त्रियों की बहुत कम हिस्सेदारी थी। सेवा के काम में स्त्री पुरुष की सहचारी, समानधर्मिणी है। पुरुषों ने स्त्री को अपना साथी और मित्र न मानकर, उनका स्वामी और सेठ मान रखा है। भारत आधा स्वतंत्र और आधा गुलाम नहीं रह सकता। दोनों की शिक्षा में समानता होनी चाहिए। दोनों को जीवन में समान अवसर मिलने चाहिए। जिन बहनों को ऊँची शिक्षा बचपन में नहीं मिल पाई, उन्हें उनके पतियों द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए। सभी माताओं और पुत्रियों को समाज में समान मानना चाहिए। उसके बिना समाज बराबर आगे नहीं बढ़ेगा। किसी भी रथ के दोनों पहिए बराबर होने चाहिए। नहीं तो गति एक जैसी नहीं होगी। तभी तो हमारा समाज लँगड़ाता हुआ चल रहा है। कई प्रदेशों में स्त्रियों की साक्षरता पुरुषों से बहुत कम है।

10. स्वास्थ्य और स्वच्छता की शिक्षा

ग्राम-सफाई को "रचनात्मक कार्यक्रम" में स्थान देने के बाद गाँधीजी ने अपनी पुस्तिका में लिखा कि उतना ही काफ़ी नहीं है। हर व्यक्ति को अपने शरीर की सफाई और स्वस्थ रहने का ज्ञान देना जरूरी है। उसके बिना सार्वजनिक स्वच्छता में वृद्धि नहीं होगी। हर सभ्य और सुव्यवस्थित समाज में नागरिक अपनी सफाई पर ध्यान देता है। वैसा ही भारत में होना चाहिए। मनुष्य जाति जिन रोगों से पीड़ित है, उनमें कई स्वास्थ्य और स्वच्छता

के नियम न पालने से होते हैं। या उन नियमों की ओर ध्यान न रखने से। यह सच है कि भारत में गरीबी बहुत ज्यादा है, इसलिए लोग ज्यादा मरते हैं। पर छोटी उम्र में मरने का कारण हमारा खानपान और जनता को स्वास्थ्य-शिक्षण न देना भी है।

रोगहीन शरीर में सही मन बसता है। मन और शरीर का ऐसा ही परस्पर संबंध है। गाँधीजी ने इसके लिए निम्न नियम दिए थे :

- दिन रात ताजी साफ हवा का सेवन करें।
- शारीरिक और मानसिक (या बौद्धिक) काम के बीच में संतुलन रखें।
- पीठ सीधी रखकर (मेरुदंड बराबर सीधा रखकर) बैठना और खड़े रहना चाहिए।
- हर काम में सफाई और सुघरता पर ज़ोर दें। व्यवस्थित मन का प्रतिबिंब है, व्यस्थित व्यवहार।

मानव सेवा के लिए अच्छा खाना और तंदुरुस्त रहना ज़रूरी है। सिर्फ तरह-तरह के स्वाद के लिए खाना-पीना एक तरह का व्यसन है। आहार शुद्धि मन और शरीर की शुद्धि की पहली शर्त है। जैसा खाओगे, वैसा सोचोगे।

पानी, आहार और हवा स्वच्छ होनी चाहिए। इसके लिए हर आदमी को ध्यान रखना होगा कि दूसरे आदमी को भी पानी, आहार और हवा स्वच्छ मिले। इसलिए पानी में गंदगी न छोड़ें। खाने में मिलावट न करें। हवा को प्रदूषित न करें। इसका ध्यान हर भारतवासी को रखना होगा। अपने लिए और सबके लिए पानी, खाना, हवा इन तीनों की सफाई बहुत जरूरी है।

11. राष्ट्र भाषा का प्रचार

चूंकि महात्मा गाँधी ने 1941 में जो लिखा था, वह आज भी इतना ही अर्थ रखता है। उनके विचारों का गुजराती से अनुवाद नीचे दिया जा रहा है

"हम अपनी मातृभाषा से अधिक अंग्रेजी भाषा के लिए प्रेम रखते आए हैं, इससे हमारे पढ़े-लिखे और राजनीतिक मतवाले लोगों में और जन समूह में एक बड़ी भारी खाई पैदा हो गई है। हिंदुस्तान की भाषाएँ उसी मात्रा में दरिद्र बनती गई हैं। गहरे और उलझे हुए विचार अपनी भाषा में व्यक्त करने का वृथा प्रयत्न करते हुए हम गोते खा जाते हैं। विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों के लिए हमारे पास समानार्थक शब्द नहीं हैं। इसका परिणाम बड़ा दुखद हुआ है। जनसमूह आधुनिक विचारों से अलग-थलग पड़ गया है। हम अपने ज़माने के इतने करीब हैं कि हिंदुस्तान की महान भाषाओं की इस तरह उपेक्षा करके हमने पूरे देश की कितनी असेवा की है, इसका अनुमान और नाप अभी हम नहीं लगा या ले सकते। यह बुराई जब तक हम दूर नहीं करेंगे, जन समूह का मन बंधन में ही जकड़ा रहेगा।....... हर आदमी को देश की प्रगति में क्या हिस्सा लेना है, यह बात जब तक उसे मातृभाषा में नहीं समझाएँगे उसकी समझ में क्या आएगा?"

"इसके बाद अखिल भारत में परस्पर व्यवहार के लिए भी हमें भारतीय भाषा समूह में से एक ऐसी भाषा चाहिए जिसे हमारी जनता की अधिक से अधिक संख्या अभी भी जानती और समझती हो। और जिस भाषा को और लोग आसानी से सीख सकें। यह भाषा निर्विवाद रूप से हिंदी है। उत्तर भारत के हिंदू और मुसलमान दोनों इसे बोलते हैं और समझते हैं। जो भाषा फारसी लिपि में लिखी जाए यह उर्दू कहलाती है। कांग्रेस ने 1925 में कानपुर अधिवेशन में एक प्रस्ताव में इस भारतीय भाषा का नाम "हिंदुस्तानी" रखा था। तबसे अब तक सिद्धांत रूप में वह राष्ट्रभाषा रही है।"

बाद में गाँधीजी ने लिखा था कि "अंग्रेजी पढ़ने में जितने बरस हम खर्च करते हैं उतने महीने हिन्दुस्तानी सीखने की तकलीफ़ उठाये बिना, जन साधारण के लिए हमारा प्रेम छिछला ही दिखाई देगा।"

12. स्वभाषा प्रेम

गाँधीजी ने लिखा था कि राष्ट्रभाषा और मातृभाषा दोनों समान हैं। दोनों की जरूरत हिंदुस्तान की एकता में बहुत बड़ी है। अंग्रेज़ी उन में से किसी का स्थान नहीं ले सकती है।

13. आर्थिक समानता

''अहिंसक पूर्ण स्वराज्य की मुख्य कुंजी आर्थिक समानता है। पूँजीवादी और मज़दूरों के बीच हमेशा का झगड़ा नष्ट करना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि एक तरफ जिनके हाथों में राष्ट्र की संपत्ति का बहत बडा भाग जमा है उन बडे धनिकों को नीचे उतरना है। और दूसरी ओर अधभूखे नंगे करोड़ों, ऊँचे उठें। धनिक और भूखे करोड़ों के बीच की महासागर जैसी खाई जब तक कायम है तब तक अहिंसक राज्यतंत्र की स्थापन की आशा, झूठी है। नई दिल्ली के महल और गरीब मज़दर वर्ग की झुग्गी झोंपड़ी के बीच इतना भेद स्वतंत्र भारत में एक दिन भी नहीं चल सकता। सच्चे स्वराज में तो गरीबों को भी वे ही सुख सुविधाएँ मिलनी चाहिए जो धनिकों के पास हैं। अगर धनपति अपना धन और धन से मिलने वाली सत्ता का स्वेच्छा से त्याग नहीं करेंगे, और एक दूसरे को साथ लेकर नहीं चलेंगे, तो एक दिन इस देश में खून खराबी वाली हिंसक क्रांति को कोई रोक नहीं सकेगा।''

14. आदिवासी

1942 में गाँधीजी ने ''रचनात्मक कार्यक्रम'' पुस्तिका में आदिवासियों की सेवा का एक और अध्याय जोड़ा। उसमें उन्होंने लिखा–

''सारे भारतवर्ष में आदिवासियों की कुल संख्या सवा दो करोड़ है। इसका अर्थ हुआ भारत की कुल लोकसंख्या का 5½ प्रतिशत, या हरिजनों से आधी संख्या। (अब 1981 की जनगणना के अनुसार देश में पाँच करोड़ आदिवासी हैं, जिनमें से एक करोड़ मध्यप्रदेश में, उनसठ लाख उड़ीसा में, अठ्ठावन

लाख बिहार में, सतावन लाख महाराष्ट्र में, अड़तालीस लाख गुजरात में, अड़तालीस लाख राजस्थान में, इकतीस आंध्र में, तीस पश्चिम बंगाल में, अठारह कर्नाटक में, दस लाख मेघालय में, छह लाख नागालैंड, पाँच-पाँच लाख त्रिपुरा और तमिलनाडु में चार-चार लाख, मिज़ोरम और अरुणाचल में, तीन लाख मणिपुर में एक लाख हिमाचल में, तिहत्तर हज़ार सिक्किम में हैं। इन आँकड़ों में आसाम की जनगणना न होने से आँकड़ें नहीं मिले। वैसे ही पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, चंडीगढ़, दिल्ली और पांडिचेरी का इसमें उल्लेख नहीं है।)

गाँधीजी ने बालासाहब खेर के लेख से उद्धरण दिया है— ''इनमें से कई आदिवासी गुलामों की ज़िंदगी बसर कर रहे हैं। ज़मींदार, साहूकार जंगल के ठेकेदार उन्हें कोई भी मेहनताना न देते हुए, बँधुआ मज़दूरों की तरह रखते हैं। उनकी स्त्रियों को ठेकेदार और मालिक जबर्दस्ती अपनी ही स्त्रियाँ मानते हैं। निरंतर भय, कठिन श्रम और बीमारी से उनका जीवन अचानक दरिद्रता में बीतता है। वे लोग इतने अज्ञानी हैं कि बीस से ऊपर वे गिनती नहीं जानते। उन्हें जमीदार, साहूकार, कांट्रैक्टर सहज ठगते हैं। उन्हें दवादारू भी नहीं मिलती।''

खेर साहब ने आदिवासी छात्रों के एक छोटे से बोर्डिंग से शुरुआत की है। अच्छे कार्यकर्ता मिल जाएँ तो यह काम बहुत बढ़ सकता है। आदिवासियों के प्रति प्रेम और सेवा ने बापू के पास फ़ादर बेरियर एलविन और ठक्कर बाप्पा जैसे आदिवासी सेवकों को जुटा दिया। पर यह काम अब भी जितना चाहिए उतना नहीं बढ़ रहा है।

गाँधीजी ने इस पुस्तिका में किसान, मजदूर और विद्यार्थी वर्ग से विशेष अपील की थी कि भारत में ग्राम-स्वराज्य लाने के लिए उन्हें क्या-क्या करना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए उन्होंने विशेष रूप से यह कहा कि ''बारह बरस से ऊपर की उम्रवाले बालक जो स्कूलों में आते हैं, उनके मन में भारत की ग्राम-सेवा

के विचार, और किसी न किसी हस्तोद्योग से आर्थिक स्वावलंबन की भावना करनी चाहिए। विद्यार्थियों को सिर्फ अखबारों या नेताओं के भाषणों से देश की दशा का पता लगाने के लिए नहीं छोड़ देना चाहिए। जो भी राष्ट्र की सेवा करना चाहता है उन युवकों के लिए विशेष समय, शक्ति और धन देना चाहिए। राष्ट्रीय जागृति तभी होगी जब शिक्षा भी स्वदेशी होगी।" बच्चों में अपने देश और देशवासियों के लिए प्रेम पैदा करना बहुत ज़रूरी है।

और इसी बात का सबूत था सेवाग्राम में तालीमी संघ का दफ़तर और शाला, जिसे आर्यनायकम, आशादेवी और रामचंद्रन आदि चलाते थे।

5

प्रार्थना

आश्रम जीवन का एक प्रधान अंग था सवेरे और शाम की प्रार्थना। यह प्रार्थना बराबर आधे घंटे से डेढ घंटे तक चलती। सवेरे आधा घंटा। शाम को एक से डेढ दो घंटा। इसमें क्या-क्या होता था?

यह जानने के लिए गाँधीजी ने साबरमती में सत्याग्रहाश्रम से नारायण मोरेश्वर खरे नामक संगीतकार से कहकर एक छोटी सी "आश्रम-भजनावलि" तैयार कराई थी। उसकी भूमिका में लिखा गया था।

"श्रुति कहती है कि, "ईश्वर एक है किन्तु भक्त लोग अपनी चितवृत्ति के अनुसार अलग-अलग नाम-रूप से उसकी उपासना करते हैं।" यह सनातन सत्य जिन लोगों ने पाया, उन पर यह जिम्मेवारी आ पड़ी है कि वे अपने जीवन में सर्व-धर्म-सम-भाव और विश्व बंधुत्व का विकास करें।"

"विधर्म के तत्व का पालन करते हुए हमारे आश्रम ने सब धर्मों और पन्थों के प्रति आदर रखने का व्रत लिया है। उसके अनुसार आश्रम में उभय संध्या काल को जो उपासना या प्रार्थना की जाती है उमका यह संग्रह है।"

यह छोटी सी दो सौ पेज की पुस्तक बड़ी काम की है। इसकी गाँधीजी ने यह "प्रस्तावना" लिखी 8 फरवरी 1947 को– चूंकि

खरे शास्त्री नहीं रहे थे। गाँधीजी लिखते हैं—"लिखने की योग्यता मैं नहीं रखता, फिर भी इतना तो कह सकता हूँ कि जो संग्रह किया गया है, उसमें मुख्य हेतु यह है कि नैतिक भावना प्रबल हो। ···· इस संग्रह में किसी एक संप्रदाय का ख्याल नहीं रखा गया है। सब जगह से जितने रत्न मिल गए, इकट्ठे कर लिए गए हैं। इसलिए इसे काफ़ी हिंदू, मुसलमान, ख्रिस्ती, पारसी शौक से पढ़ते हैं, और इससे कुछ-न-कुछ नैतिक खुराक पाते हैं। संस्कृत श्लोकों के अर्थ-देने में भाई किशोरीलाल मश्रूवाला ने काफी परिश्रम उठाया है।"

इस छोटे से भजन-संग्रह का इतिहास है। जब गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में थे और उन्होंने सामुदायिक जीवन आरंभ किया, नित्य शाम को प्रार्थना होती थी। उसका संग्रह "नीतिनांकाव्यों" नाम से छापा गया। साथ-साथ गीता के "स्थितप्रज्ञ के लक्षण" भी गाए जाते थे।

1914 में गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका छोड़कर जब भारत में आ गए तो पहले शांतिनिकेतन में रहने गए। वहाँ रवींद्रनाथ ठाकुर के रचे सुंदर गीत शामिल हो गए। जब काका कालेलकर आश्रम में आए तो मराठी संतों के पद उसमें जुड़ गए। श्रीमद् रामचंद्र एक जैन आशुकवि थे, जो गाँधीजी के बालजीवन के मित्र थे। उनके विचारों से गाँधीजी बहुत प्रभावित हुए। उनके लिखे कुछ गुजराती भजन आ गए। पं. खरे जब आश्रम में आए तो हिंदुस्तानी संगीत की वृद्धि हुई। रामधुन भी उसमें जोड़ दी गई। धीरे-धीरे विनोबा की सलाह, आश्रम में आने वाले अलग-अलग धर्मों और भाषाओं के लोगों की रुचि और सुविधा के हिसाब से आश्रम-भजनावली में कई पद जुड़ते चले गए।

नरसी मेहता नामक गुजराती भक्तकवि का "वैष्णव जन तो तेणे कहिए" गाँधीजी का प्रिय भजन था। काका साहब इस पुस्तिका की भूमिका में लिखते हैं कि "पू. बापूजी ने स्वयम् वृक्षन

से मत ले'' जैसे भजन पसन्द करके दिए।'' यह सूरदास का बिहाग राग का पद आज भी बहुत अर्थपूर्ण है, जबकि हम देश में पर्यावरण की बात, प्रकृति के साथ हमारे संबंधों की बात, नए सिरे से सोच रहे हैं :

वृक्षन से मत ले,
मन तू वृक्षन से मत ले।
काटे वाको क्रोध न करहीं,
सिंचत न करहिं नेह।।
धूप सहत अपने सिर ऊपर
और को छाँह करेत।
जो वाही को पथर चलावे,
ताही को फल देत।।
धन्य-धन्य ये पर-उपकारी,
वृथा मनुज की देह।
सूरदास प्रभु कहें लगि बरनौ,
हरिजन की मत ले।।

इसका अर्थ है हमें पेड़ों से ''मति'' या बुद्धि लेनी चाहिए। जो उनको काटते हैं, सींचते नहीं हैं उनसे भी वे क्रोध नहीं करते, प्रेम ही करते हैं। ये धूप अपने सिर पर लेते हैं : छाल, लकड़ी, पत्ते, फूल, फल, छाया, उनसे छनकर आनेवाली हवा, उनके कारण खिंचकर आनेवाले बादल, उनके घने पन से रुकने वाली अतिवर्षा, उनके कारण बसेरा मिलने वाले पक्षी, उन पक्षियों के कारण और कीड़ों-मकोड़ों से बचाव, उन डालियों पर लगने वाले शहद के छत्ते... कितने-कितने लाभ हैं वृक्षों से। उन्हें व्यर्थ नहीं काटना चाहिए।

इस ''आश्रम-भजनावलि'' को हम एक साहसिक भंडार समझ सकते हैं। मेरे पास जो प्रति है उस पर लिखा है कि नवजीवन ट्रस्ट ने इसे सबसे पहले 1922 में छापा, यह पचास पैसे

की पुस्तक, जो अगस्त 1961 में छपी है, उस पुस्तक का अट्ठारहवाँ संस्करण है और एक संस्करण 50000 प्रतियों का था। इसका मतलब यह हुआ कि यह पुस्तक लाखों लोगों के पढ़ने में ही नहीं आई, उनके लिए यह बहुत बड़ी प्रेरणा और आश्वासन या सहारा बनी। गाँधीजी का यह प्राचीन और मध्य युग के भक्ति साहित्य के प्रति प्रेरणा का पहलू सब लोग नहीं जानते। उन्होंने सन् 30 और 42 में जेल में जाने पर इनके कुछ भजनों का अंग्रेजी में अनुवाद करने का भी यत्न किया। महादेव भाई से अनुवाद करने का आग्रह किया।

इस छोटी सी किताब में क्या-क्या जमा है, उनकी सूची यहाँ इसलिए दे रहा हूँ कि हमारे सब विद्यार्थी-मित्रों को इनमें से कई चीजें पढ़नी चाहिए। हम लोगों की पीढ़ी ने तो वर्षों तक इसे सुबह-शाम प्रार्थना में पढ़ा ही नहीं, हमें चीजें कंठस्थ हो गई हैं। इस पस्तक में—

ईशावास्य उपनिषद का पहला मंत्र
प्रातः स्मरण/सायं स्मरण
एकादश-व्रत
कुरआन की आयतें (मुस्लिम)
जरस्थोस्ती गाथा (पारसी)
बौद्ध मंत्र
भजन
रामधुन
गीतापाठ
उपनिषत् स्मरण
पांडव-गीता से
मुकुंदमाला से
द्वादशमंजरिका से
तुलसी रामायण से

भजनों में इतनी भाषाओं से भजन इस पुस्तिका में हैं– हिंदुस्तानी, गुजराती, मराठी, बंगाली, सिंधी, अंग्रेजी और अंत में राष्ट्रगीत भी हैं–"वंदेमातरम्". और "जन-गन-मन" और "सारे जहां से अच्छा"।

इन भजनों और पदों में इन सब भक्तों और संत कवियों की रचनाएं हैं–तुलसीदास, सूरदास, कबीर, कमाल, गुरुनानक, मीराबाई, दादूदयाल, रैदास, नितानंद, अखो, श्री हरिदास, जनिजसवंत, ब्रह्मानंद, नन्ददास, प्रेमसखी, प्रेमानन्द, रसिक, सुजस, आनन्दघन, गिरधर, एका जनार्दन, निधिराय जी, मंसूर, नज़ीर, नरसैया दयाराम, प्रीतम, निष्कुला नंद, मुक्तानंद, केशवलाल, दासधीरो, भोजो, बापू, प्रेमलदास, रणछोड़, लांगफेलो (लीड काइंडली लाइट) रवींद्रनाथ ठाकुर, तुकाराम, अमृत, सोहिरोबा, नामदेव, रामदास, शिवदिन योगी, कृष्णसुत- तीन चार भजन सिंधी और हिंदुस्तानी में अनाम हैं– अंग्रेजी भजनों के भी कवियों के नाम नहीं दिए हैं। कुल 188 भजन और गीत हैं। यह संकलन सब भाषाओं सब धर्म-मतों, सब प्रदेशों का एक सुंदर सार-संग्रह है।

इस तरह का एक संकलन सब भाषाओं और प्रदेशों के उत्तम गीतों का हमारी शिक्षा की नई नीति में प्रार्थना का अंश बनाकर, हमें गांधीजी से प्रेरणा लेकर शिक्षालयों में प्रयुक्त करना चाहिए। वैसे कान्वेंट स्कूलों में ईसाई प्रार्थनाएं होती ही हैं, दयानन्द आर्यवैदिक शालाओं में वेद मंत्र आधारभूत माने जाते हैं, मुस्लिम, सिख, पारसी, जैन शालाओं में उन-उन धर्मों के पवित्र ग्रंथों से अंश मदरसों और गुरूकुलों में अनिवार्य रूप से पढ़वाए जाते ही हैं। कोशिश यह होनी चाहिए कि इन सब का मधु-संचय, सरस भाषा में हमारे बालकों और किशोरों तक पहुँचे। गाँधीजी के राष्ट्रीय आंदोलन में जो लाखों लोग जेलों में गए, उनमें देवनागरी पढ़ सकने वालों के लिए यह छोटी सी पुस्तक एक तरह के नित्य पाठ का, बाइबल या कुरआन का काम

करती रही। बहुत बड़ी प्रेरणा-स्रोत बनी।

गाँधीजी का मानना था कि जीवन में जब-जब संकट आएँ, कोई बहुत बड़ी दुविधा हो तो प्रार्थना से मनुष्य को बल मिलता है। और उसी के लिए उन्होंने भारत की दो हजार से ऊपर वर्षों की सांस्कृतिक परंपरा से ये मोती खोज निकाले थे। इन भजनों और पदों में किसी भी अन्य धर्म या मत को माननेवाले का विरोध नहीं है। भूमिका में काका साहब कालेलकर ने लिखा है– ''इस भजन-संग्रह में आश्रम जीवन का ही यथार्थ प्रतिबिंबित है। आश्रम जीवन जैसे-जैसे समृद्ध होता गया, वैसे-वैसे यह भजन-संग्रह बढ़ता गया।

गाँधीजी ने कई बार सूचना दी थी कि अगर आश्रम के सिद्धांतों के खिलाफ कोई भाव किसी भजन में आते हों, तो उस भजन को भजनावलि से निकाल दिया जाए। मसलन, मृत्यु का डर दिखाने वाले भजन हमारे काम के नहीं हैं। वैराग्य का उपदेश करने के लिए, स्त्री जाति की निंदा करने वाले कोई भजन हों, तो वे भी हमारे काम के नहीं हैं। जिन भजनों में भक्तिभाव नहीं है या जो भजन कृत्रिम हैं और कवि का सारा प्रयत्न अनुप्रासादि शब्दालंकार सिद्ध करने का ही हो, ऐसे भजन कभी पसंद नहीं करने चाहिए।

गाँधीजी ने कहा, ''हमारा आश्रम किसी एक धर्म का नहीं है, सब धर्मों का है। सबकी सहूलियत जिसमें अधिक हो वैसा ही वायुमंडल हमें रखना चाहिए। सर्व-धर्म-सम-भाव का वही अर्थ है।''

इस ''आश्रम-भजनावलि'' में सर्वाधिक भजन तुलसीदास, नरसिंह मेहता और तुकाराम के हैं। उसके बाद मीराबाई, कबीर और सूरदास के हैं। मैंने हिंदी के कई कविता-संकलन पढ़े हैं, जिन पर जितना अच्छा और प्रेरणादायक यह संग्रह मुझे लगा, दूसरा कोई नहीं मिल पाया। यही कारण है कि इसका प्रचार-प्रसार इतना व्यापक रूप से हुआ है।

6

आश्रम के अतिथि और संस्मरण

इस अध्याय में मैं जब सेवाग्राम आश्रम में था, उस समय की अपनी धुंधली स्मृतियाँ, और साथ ही अन्य कई अतिथियों के संस्मरणों को एक साथ गूँथने का यत्न किया गया है। इन छोटी-छोटी बातों से पता चलता है कि गाँधीजी कितने सजग और सचेत महामानव थे। वे हर क्षण का हिसाब रखते थे। हर पाई-पाई के पाने और खर्च करने का हिसाब रखते थे। वे न केवल क्षण और कण-कण का, तन और धन का व्यावहारिक हिसाब रखते थे। परंतु जो भौतिक साधन से ऊपर हमारा नैतिक मन है, वह उनका प्रधान विषय था। वे छोटे से छोटे कार्यकर्ता और सेवक का, आश्रम में आने जाने वाले हर परिचित-अपरिचित मनुष्य का कितना ध्यान रखते थे, यह बात बहुत बड़ी है। इन सब घटनाओं, यादों और कई विनोद की बातों का भी बड़ा महत्व है। उनसे हम कई-कई बातें सीख सकते हैं।

मैं जब आश्रम में था तब डा. राजेन्द्रप्रसाद और आचार्य नरेंद्रदेव, ये दो दमे के मरीज़, वहां की रूखी हवा के कारण, आश्रम में कई हफ्ते हलाज के लिए आकर रहे। बापू उनके खान-पान, आहार-विहार, शारीरिक व्यायाम और विश्राम का एक डाक्टर की तरह ध्यान रखते थे। आश्रम की छोटी सी चिकित्सा-शाला (डिस्पेंसरी) डा. सुशीला नायर और लीलावती

बेन जैसी बहनों द्वारा चलाई जाती थी। वे बापू के प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोगों में बराबर उनकी मदद करती रहतीं। यहीं पर सेवाग्राम से गरीब से गरीब खेतीहर और मजूर परिवार भी मुफ्त दवा-दारू और वैद्यकीय सहायता लेने आया करता था। सवेरे बापू सेवाग्राम तक टहलने जाते तो हर बीमार को जाकर खुद देखा करते थे, और औषधि का कम से कम उपयोग करके,

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के साथ चर्चा



विदेशी अतिथियों में मुझे लुई फिशर की याद है। उन्हें वर्धा की भीषण गर्मी बहुत सताती थी। तो अतिथिशाला में एक टब में पानी में बैठकर वे पास स्टूलपर टाइप-राइटर रखकर अपनी पुस्तकें टाइप किया करते थे। वे तब रूस से लौटे थे, जहाँ उनकी पत्नी और बच्चों को स्तालिनशाही में उनकी इच्छा के अनुसार पढ़ाई की स्वतंत्रता नहीं मिल पाई। इसलिए वे नाराज थे। उन्होंने बाद में लेनिन के रूस में, और स्तालिन के रूस में नामक दो किताबें उसी दौरान लिखीं।

सन् 40 की गर्मी की छुट्टियों में, फ्रांस में रहने वाली भारतीय अंग्रेजी लेखक कन्नड़भाषी राजाराव भी आकर एक कुटी में रहते थे। उनसे मेरी मैत्री हो गई थी। उन्हीं की सहायता मे, बापूजी के आग्रह पर मैंने "पुण्य कोटि गौ की कथा" नामक लंबी कविता का हिंदी में अनुवाद किया था, जो दुर्भाग्य से उन्हीं के कागजों में कहीं दबा पड़ा रहा। गाँधी-जन्मशताब्दी में, 1969 में वह पाण्डुलिपि उन्होंने लाकर मुझे दी। और उसका प्रकाशन संभव हुआ। मुझे स्मरण आता है कि उन्हीं दिनों "गाँधी और मार्क्स" नामक चार सौ पंक्तियों की एक हिन्दी कविता मैंने लिखी जिसे आचार्य नरेंद्रदेव ने अपने लखनऊ से प्रकाशित होने वाले पाक्षिक पत्र "संघर्ष" के छब्बीस जनवरी 1941 के विशेषांक में प्रकाशित किया था।

अब सेवाग्राम आश्रम में आने वाले अनेक प्रकार के अतिथियों के और वहाँ के निवासियों के छोटे-छोटे संस्मरण मैं यहाँ इस हेतु दे रहा हूं कि हमारे किशोर पाठक उनसे कुछ शिक्षा ग्रहण करें, उनसे उनका मनोरंजन भी हो, और गाँधीजी के बहु-गुणी व्यक्तित्व को समझने में उन्हें मदद मिले।

पंडित जवाहरलाल नेहरू मद्रास जाते हुए वर्धा रुके। गाँधीजी के दर्शन के लिए वे वहाँ आए। सेवाग्राम में उस छोटी सी झोंपड़ी के बरामदे में गाँधीजी ने दो मरीजों की खटिया डाल रखी थी। उन रोगियों को ज्वर था। गाँधी ने उन्हें अस्पताल न

भेजकर, स्वयं उन रोगियों की देखभाल करना, उनका खाना-पीना, नहलाना सब बातें खुद करने का निर्णय लिया था। उन्होंने न नेहरू, न पटेल, न राजेंद्र बाबू के लिए, यह नित्य क्रम छोड़ा। आखिर पटेल ने तंग आकर कहा—"बापूजी, आपको फुरसत न हो तो हम चलें?"

गाँधीजी ने मुस्कराकर कहा कि रोगियों की सेवा करना बड़ा कठिन काम है। और अगर हम यह न करें तो कौन करेगा? इस पर जवाहरलाल नेहरू ने झुंझलाकर कहा—"आप तो राजा केन्यूट की तरह अपनी तलवार से समुद्र की लहरों को रोकने में लगे हो। यह कभी खत्म न होने वाला काम है।"

गाँधीजी ने तुरंत उत्तर दिया—"राजा तो आपको बना दिया है आप इसको ज्यादा आसानी से कर सकोगे?"

पंडित नेहरू के साथ गंभीर समस्या पर बातचीत



जवाहरलाल जी ने फिर कहा—"क्या यह सब आप ही को करना चाहिए? और कोई उपाय नहीं है क्या?"

गाँधीजी ने उत्तर दिया—"और कौन करेगा? पास के गाँव में जाकर देखो। छह सौ लोगों में से आधे बुखार में पड़े हैं। क्या इतने लोगों को अस्पताल ले जाने की सुविधा है? हम सब को अपना इलाज खुद करना सीखना चाहिए। वरना हम सब उसी बीमारी से ग्रस्त हो जाएँगे। इन गरीब गाँववालों को सिखाने का वही एक ढंग है कि हम खुद यह सेवा करें और उनके आगे आदर्श रखें।"

सेवाग्राम का नाई आश्रम में रहने वाले हरिजन गोविंद की हजामत नहीं बनाता था। बापूजी ने उससे पूछा कि "ऐसा क्यों करते हो, भाई?" तो नाई ने कहा "अगर मैं गोविंद की हजामत बनाऊँगा तो गाँव का पटेल मुझे जात-बाहर कर देगा। कोई मुझसे हजामत ही नहीं बनवाएगा।"

इस पर गाँधीजी ने पटेल दादा को बुलाया। उसने कहा, "महाराज, मैं तो ऐसा भेदभाव नहीं करता। मैं कहता हूँ कि यह नाई गोविंद की हजामत बनाए, और तुरंत उसके बाद मेरी बनाए। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

गाँधीजी नें फिर पूछा—"तो बात क्या है?"

पटेल बोला—"मुझे बाल बनाने में कोई आपत्ति नहीं है। पर यह नाई कहता है, मेरे घर पर खाना खाओ। अब देखिए मैं इतना बूढ़ा हो गया, आज तक मैंने बाहर किसी होटल का पानी भी नहीं पिया। अब यह क्यों चाहता है कि उसके साथ बैठकर मैं खाना खाऊँ? मैंने आपसे बहुत पहले कह दिया था, आपकी मैं इज्जत करता हूँ। पर यह आपकी छुआछूत की बात मैं नहीं मानूँगा। आज मैंने कह दिया न कि अछूत से हजामत मैं बनवा लूँगा, और उसे अछूत नहीं मानूँगा। और क्या चाहिए?"

गाँधीजी हँसे और बोले—"तुम्हारी बात मैं अच्छी तरह समझ गया पर यह खाने की बात पर आग्रह क्यों करता है?"



सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी और सरोजनी नायडू के साथ

पटेल ने कहा कि वह जानता है कि उसकी जातिवाले मेरी हजामत बनाने पर उसे जात से निकाल देंगे। इसलिए वह खाना खिलाकर बात पक्की कर लेना चाहता है।

गाँधीजी ने कहा—"तुम मेरे साथ तो मेरा खाना खा सकते हो?"

"क्यों नहीं, आप तो महात्मा हो!"

गाँधीजी ने कहा—"हमारा खाना गोविंद ही बनाता है।" पटेल अपनी बात पर लज्जित हो गया।

यह घटना भी सेवाग्राम की ही है। एक बार गाँधीजी कमलयन बजाज और उनकी माताजी के साथ घूमने जा रहे थे। राह में उन्हें पूनी का एक छोटा-सा टुकड़ा दिखाई दिया। इशारे से उन्होंने उसे उठाने के लिए कहा। एक लड़की ने उसे उठा लिया। जब वे अपनी कुटी में लौटकर आए तो उस टुकड़े की खोज हुई। गाँधीजी ने उस लड़की से पूछा—"वह पूनी का टुकड़ा जो तुमने उठाया था, ले आओ।" लड़की ने उत्तर दिया—" मैंने उसे कूड़े की टोकरी में फेंक दिया।"

गाँधीजी नाराज हुए—"मैंने उसे उठाने के लिए इसलिए नहीं कहा था कि उसे कूड़े में फिर तुम फ़ेंक दो।"

लड़की ने जवाब दिया—"मैं तो उसे कचरा ही समझती थी। शायद आप चाहते थे कि यह कचरा गलत जगह पड़ा है उसे अपने स्थान पर डाल दिया जाए।"

गाँधीजी ने पूछा—"पूनी की जगह पैसा होता तो क्या तुम उसे भी कूड़ेदानी में फेंक देतीं?"

"नहीं"

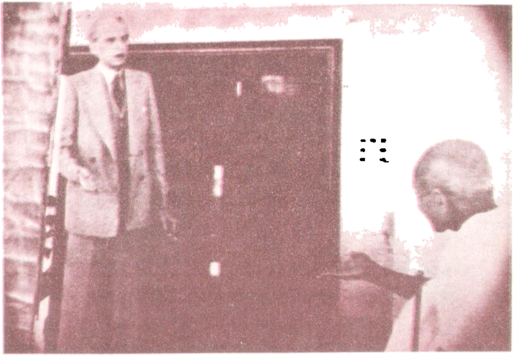
"वह पूनी भी धन ही है। जिसने कातते-कातते कपास के उस टुकड़े को फेंक दिया था, उसने धन ही फेंका था। अब जाओ, और उसे खोजकर ले आओ।"

लड़की बहुत लज्जित हुई। वह खोजकर उस टुकड़े को ले आई। गाँधीजी ने उस कपास की मैली पूनी से सूत काता और कहा, "जब कपड़ा बुना जाएगा मिट्टी भी उससे छूट जाएगी।"

गाँधीजी आश्रम में छोटी से छोटी वस्तु के ज़ाया न होने पर ध्यान रखते थे।

इसी तरह की छोटी सी चीज़ का उदाहरण है शीशी की डाट। बलवंत सिंह सेवाग्राम में खेती देखते थे। आश्रम में एक बढ़ई भी उसी समय काम कर रहा था। गाँधीजी ने बलवंत सिंह को एक शीशी दी और कहा कि "डाट चाहिए।" बलवंत सिंह ने बढ़ई से डाट बनवाकर गाँधीजी को लाकर दी। गाँधीजी ने देखा तो समझ गए की यह बलवंत सिंह ने ख़ुद न बनाकर बढ़ई से बनवाई है। गांधीजी ने बलवंत सिंह से कहा—" यह तुमने ठीक नहीं किया। मैंने तो कहा था कि तुम खुद उसे बनाते आज नहीं कल और अच्छी डाट बनाना सीख जाते। पर बढ़ई से बनवाने से तुमने स्वावलंबन खो दिया। यह अच्छी बात नहीं हुई।"

हिंदी के लेखक ठाकुर श्रीनाथ सिंह 1937 में गाँधीजी से मिलने वर्धा गए। तब गाँधीजी मगनवाड़ी में रहते थे। वहाँ जमनालालजी ने संतरे के बगीचे लगाए थे। श्रीनाथ सिंह जी



मोहम्मद अली जिन्ना के साथ पाकिस्तान की परिकल्पना पर असहमति

समझे कि हमें अब खूब संतरे खाने को मिलेंगे। पर गाँधीजी ने कहा—''ये संतरे बिक्री के लिए हैं। खाने के लिए नहीं।'' उस समय का संस्मरण उन्होंने लिखा है कि ठाकुर साहब ने जब भोजन संबंधी अनेक प्रश्न पूछे तो उन्हें बापू ने भोजन के लिए आमंत्रित किया। पुरुषोत्तम दास टंडन, एक जापानी और दो अमेरिकी आदमी भी। भोजन पर गोबर से लिपे हुए फर्श पर सब लोग एक साथ खाने के लिए एक चटाई बिछी थी, उस पर बैठ गए। समय पर लड़कियों ने सबके सामने एक-एक थाली और दो-दो कटोरियाँ ला रखीं। एक कटोरी में मट्ठा था, दूसरी में आलू-शकरकन्द का साग, नीम की चटनी और थोड़ा-थोड़ा गुड़ भी रखा था। गाँधीजी ने कहा—''हम गरीब लोग आप जैसे मेहमानों को और क्या खिला सकते हैं? जो और बढ़िया भोजन चाहते हैं वे जमनालाल बजाज के घर पर ठहरते हैं। लेकिन मैं मानता हूँ कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए इतना भोजन काफी है।''

कस्तूरबा रोटी परोसने के लिए आईं। बासी रोटी मेहमानों को नहीं दी गई। श्रीनाथ सिंह ने कहा—"बापूजी, हमने पत्र-पत्रिका में पढ़ा था कि आप तो शहद, फल और बकरी का दूध लेते हैं।"

"नहीं जब दौरे पर होता हूँ, और लोग प्रेम से ऐसी चीज़े देते हैं तो ले लेता हूँ। उन्हें न खाएँ तो उनको बुरा लगेगा। वर्ना आश्रम में तो हम जबान पर संयम और "अस्वाद व्रत" ही सिखाते हैं।"

आहार और चिकित्सा के प्रयोग गाँधीजी स्वयम् करते थे और आश्रमवासियों पर भी करते थे। उनका मानना था कि मनुष्य का शरीर एक संगीत वाद्य की तरह है। उसे हमेशा साफ सुथरा और व्यवस्थित रखना चाहिए। नहीं तो वह अच्छा स्वर नहीं देगा। उसी तरह मनुष्य स्वस्थ नहीं होगा तो उससे सेवा कैसे ले सकेगा। शास्त्रों में लिखा है कि "शरीर ही आद्य" है। सब धर्म साधन उसी के बाद होते हैं। "तन चंगा तो मन चंगा।"

सेवाग्राम में एक पहचत्तर बरस की बुढ़िया धोबिन दवा लेने आई। उसका सारा बदन खुजला रहा था, और वह ईंट के एक टुकड़े से बदन खुजला रही थी और रो रही थी। गाँधीजी ने उसे दवा दी—"नीम की पत्तियाँ पीसकर इसे खिलाओ और पीने के लिए छाछ दो।" जिस चिकित्सक को गाँधीजी ने यह काम दिया था, उसने नीम की पत्तियों की मात्रा बता दी थी। जब फिर वह गाँव में उस बुढ़िया को देखने गया और पूछा कि "तुमने कितनी छाछ पी है?" तो वह बढ़िया रोकर बोली—"मेरे पास छाछ कहाँ से थी। मैंने नहीं पी।" "डाक्टर ने लौटकर यह बात गाँधीजी को बताई। वह उदास हो गए। उन्होंने डाक्टर से कहा—"अमेरिका और जर्मनी से तुम यही डाक्टरी सीखकर आए हो क्या? मैंने जब कहा था कि उस बुढ़िया को छाछ पिलाना। तो तुम्हें गाँव से छाछ माँग कर पिलाना था। तुम तो उसे रोती हुई छोड़कर मुझे यहाँ बताने

के लिए आए हो। यह कैसी चिकित्सा की पढ़ाई तुमने सीखी? क्या इसी तरह गाँव वालों की सेवा करोगे?''

गाँधीजी का मत था कि सारा देश ''दरिद्र नारायणों'' से भरा है, यानी सारे भारत में जब इतनी गरीबी है, तो आश्रम में किसी प्रकार का उत्सव मनाना उचित नहीं। एक बार सेवाग्राम में दीवाली मनाई गई, तो आश्रम में प्रार्थना के समय एक छोटा सा तेल का दीया कस्तूरबा ने लाकर रख दिया। गाँधीजी ने बड़ी नाखुशी से अपने प्रार्थना के बाद के प्रवचन में सब के सामने कह दिया—''देश में लोगों के पास खाने के लिए तेल नहीं है, और बा यहाँ दीये में तेल जलाकर त्यौहार का आनंद मनाना चाहती है। यह फिज़ूलखर्ची है। मैं इसे बिल्कुल पसंद नहीं करता।'' इस कारण से वे आश्रम में संपन्न होनेवाली शादियाँ बहुत सादगी के साथ, और बहुत कम खर्चे में कराने के पक्ष में थे। वे किसी भी तरह के फिज़ूल के दिखावे के खिलाफ थे।

एक बार 2 अक्तूबर को गांधीजी का जन्मदिन सेवाग्राम आश्रम में मनाया गया। शाम की प्रार्थना के बाद गाँधीजी को सुनने के लिए बहुत लोग जुटे थे। उस समय किसी ने एक घी का दीया लाकर रख दिया था। गाँधीजी ने अपने प्रवचन के आरंभ में पूछा—''यह दीया यहाँ कौन लाया है?''

कस्तूरबा ने कहा—''गाँववाले लाए थे। मैंने उसे वहाँ रख दिया।''

गाँधीजी ने फिर पूछा—''यह आज क्यों?''

''आज आपकी वर्षगाँठ है।''

गाँधीजी एक क्षण को मौन हो गए। फिर गंभीर स्वर से बोले—''आज यह सबसे बुरा काम हुआ है। दीया वो भी घी का, और बा ने जलाया है? आसपास गाँव में लोग कैसे रहते हैं मैं जानता हूँ। ज्वार-बाजरे की रोटी के साथ तेल भी चुपड़ने के लिए उन्हें नहीं मिलता है, और यहाँ मेरे आश्रम में घी का दीया जले! यह बड़े दुख की बात है।''

एक बार एक अमेरिकन महिला सेवाग्राम आश्रम देखने आई। एक दिन सहसा ऐसी दुर्घटना हुई कि वह जल गई। सोचा—इस आश्रम में किसी न किसी के पास मलहम होगा, इसलिए उसने माँगा।

गाँधीजी ने कहा—इस पर मिट्टी लगाओ।

उसने वैसा ही किया। और जलन कम हुई। उसे अच्छा लगने लगा। वह किसी पत्र की संवाददाता थी। भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने इस देश में आई थी। गाँधीजी ने उसे समझाया—''गाँवों में विलायती दवाओं को हम काम में नहीं लाना चाहते। अगर ऐसा हुआ तो देशवासी अपनी घरेलू और देशज दवाएँ भूल जाएँगे। वे महँगी होती हैं। देशवासी धीरे-धीरे दरिद्र हो जाएँगे। पुराने जमाने में विदेशी दवाएँ मिलती नहीं थीं, घर-घर में दादी-नानी अपना जड़ी-बूटी का बटुआ रखती थीं। अब नई पढ़ी-लिखी लड़कियाँ क्यों न ग्रामसेवा करें? उस परंपरा को तोड़कर हर आदमी दवा की दुकान की ओर दौड़ता जाए, यह कहाँ की बुद्धिमानी है? आप विदेश से आई हैं। यहाँकी हालत देखिए और फिर से सोचिए।''

एक बुड्ढ़ा सेवाग्राम आश्रम में आया। वह सवेरे से शाम तक खूब काम करता, कोई भी काम हलका नहीं समझता था। दिन भर वह नंगे पैरों घूमता। नंगे बदन, मैली धोती पहने वह हमेशा मेहनत करता। एक दिन उसने गाँधीजी से आकर कहा—''मुझे एक जोड़ा जूता चाहिए। दिन में तो मैं बिना जूतों के काम कर लेता हूँ। पर रात को अंधेरे में, बारिश में जूते की जरूरत रहती है।''

उस बूढ़े ने पुराने गत्ते जमाकर उनका एक जूता बना भी लिया, वह कितने दिन चल पाता। उसने गाँधीजी से माँगकी कि ''आश्रम में कोई फटा-पुराना जूता हो तो दीजिए, वही पहनकर काम चला लूँगा।''

गाँधीजी ने पूछा कि ''फटा क्यों नहीं पहनते हो?''

उस गाँव के बुड्ढे ने कहा—''फटे-पुराने जोड़े-कपड़े और बचा हुआ अन्न खाकर जीना ही अच्छा है।''

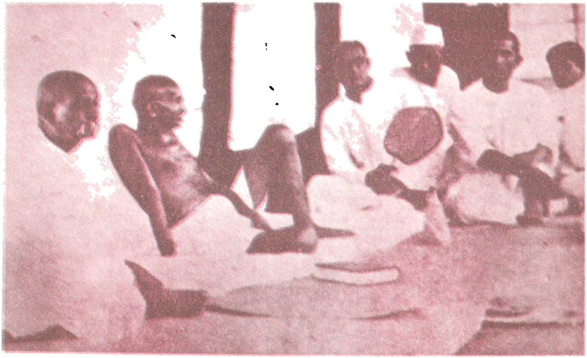
गाँधीजी ने कहा—''मैं तुम्हारे लिए नया जूता बनवा दूँगा।

वह बोला—''मुझे आपके ये नये फैशन के स्लीपर नहीं चाहिए। मैं तो पुराने ढंग का औखाई जूता ही पसंद करता हूँ।''

गाँधीजी ने कहा—''चर्मालय से मैं तुम्हें औखाई जोड़ा बनवा दूँगा।''

''नहीं, नहीं, मालवाड़ी में मोची यह कैसे बनाएगा? मुझे वहाँ जाकर उसे समझाना पड़ेगा। उसके लिए एक दिन का काम मैं कैसे छोड़ूँ?''

गाँधीजी ने कहा कि ''मैं मोची को ही यहाँ बुला दूँगा।'' और गांधीजी ने तीस बरस पहले देखे हुए ''औखाई जोड़े'' का नमूना



कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक में

कार्ड-बोर्ड पर खुद काटकर बनाया और उसे दिया। बुड्ढा आश्चर्यचकित हो गया।

एक दिन गाँधीजी सूत कातने के बाद उसे लपेटे पर लपेटने वाले थे, कि उन्हें किसी जरूरी काम से बाहर जाना पड़ा। अपने टंकक सुबैया से उन्होंने कहा–"सूत लपेटे पर उतारना, तार गिन लेना और प्रार्थना के समय बता देना।"

सुबैया ने हामी भरी। गाँधीजी चले गए। साँज की प्रार्थना के समय आश्रम वालों से पूछा जाता था कि हर एक ने कितना सूत काता है। हर आदमी ॐ कहकर सूत के तार की संख्या बताया करता था। गाँधीजी का नंबर अंत में आया। तो उन्हें अपने सूत के तार की संख्या मालूम ही नहीं थी। उन्होंने सुबैया से पूछा। वह चुप रहा।

प्रार्थना के बाद गाँधीजी गंभीर हो गए। उन्होंने आश्रम-वासियों से कहा–"मैंने आज भाई सुबैया से कहा था कि सूत उतार लेना और तारों की संख्या बता देना। पर यह मेरी भूल थी। अपना काम मैंने दूसरे पर डाल दिया, उसके भरोसे रहा। यह बात ठीक नहीं। अपना काम किसी दूसरे के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए। मैं अब ऐसी भूल फिर नहीं करूँगा।"

गाँधीजी सेवाग्राम में "आदिनिवास" में रहते थे। आश्रम तक तब पूरी तरह बना-बसा-बढ़ा नहीं था। उन दिनों जमनालाल बजाज के जमाई श्रीमन्नारायण अग्रवाल वहाँ रहने के लिए आए। गाँधीजी ने उनसे जानना चाहा कि वे कहाँ तक पढ़े हैं?

"बापूजी, मैंने अंग्रेजी में एम.ए. किया है।"

गाँधीजी–"क्या तुम चरखा चलाना जानते हो?"

श्रीमन्नारायण –"मैं नहीं जानता, पर अब चलाना सीख लूँगा।"

गाँधीजी ने कहा – "चरखा भारत के राष्ट्रीय जीवन का प्रतीक है। इसी के सहारे हम गरीब जनता की सेवा करेंगे। यह

नहीं सीखा तो तुम जो कुछ अब तक सीखे हो वह खाक छानते रहे!

और सचमुच में गाँधीजी ने आश्रमवासी को बुलाकर कहा—"इस नये आश्रमवासी को संडास में डालने के लिए खाक या मिट्टी छानने के काम में अपना सहायक बनाओ।"

गाँधीजी की दृष्टि में शरीर श्रम के बिना सिर्फ विद्या व्यर्थ है।

शुरू-शुरू में सेवाग्राम आश्रम में एक ही कुटी बनी थी। उस के एक कोने में गाँधीजी रहते, दूसरे में कस्तूरबा। उसी बड़ी सी कुटी के एक कोने में खान साहब रहते थे, और दूसरे में मुन्नालालजी। मेहमान भी बहुत आते-जाते थे। इन सब पुरुषों के बीच में आराम करने में कस्तूरबा को बहुत संकोच होता था। उन्होंने गाँधीजी से शिकायत की—"आपको पता नहीं कि हम स्त्रियों को कितना संकोच होता है। कपड़े बदलने और आराम करने को कोई आड़ तो चाहिए। आपने तो हमें जैसे सराय में डाल दिया है।"

गाँधीजी ने कहा—"हम गरीबों के प्रतिनिधि हैं। गरीब तो ऐसे ही अड़चन में रहते हैं। पर तुम कहती हो तो बलवंत सिंह से कह कर थोड़ी सी आड़ बनवा देता हूँ।"

बलवंत सिंह ने बरामदे में दीवार में दो छेद करके उसमें बाँस डाल दिये। और उनसे टट्टा बाँध दिया, और उनमें एक दरवाजा भी बना दिया। गाँधीजी से जाकर कहा—"कस्तूरबा के लिए हमने महल बना दिया है।"

गाँधीजी ने आकर देखा, कहा—"वाह! बहुत अच्छा बन गया।" कस्तूरबा बेचारी क्या कहती। उन्होंने हाँ में हाँ मिला दी।

एक बार एक पंडितजी आश्रम में आए। गाँधी से उनका परिचय कराया गया कि उन्होंने बहुत किताबें पढ़ रखी हैं और गीता पर वे अच्छा प्रवचन देते हैं। गाँधीजी ने उनसे पूछा—"क्या गीता में किसी को अछूत मानने की बात लिखी है?"

पंडित ने कहा—"अछूत तो वह है जो बुरी बातें सोचता है, कड़ुए वचन मुंह से निकालता है। बुरे काम करता है, यानी मन वचन और कर्म से तो पाप करता है, ऐसे आदमी से दूर रहना चाहिए।

गाँधीजी बोले—"इस तरह से तो हममे से हर एक आदमी आचार विचार उच्चार से अछूत है। ऐसा कौन है यहाँ पर जिसने एक भी पाप नहीं किया हो?"

तुकड़ोजी महाराज वहाँ बैठे थे। उनसे गाँधीजी ने पूछा। वे बोले—"मैं तो ऐसा आदमी नहीं हूँ जो पाप-रहित हूँ।"

खान अब्दुल गफ्फार खाँ वहाँ पर थे। उनसे गाँधीजी ने पूछा "आप क्या कहते हैं?" वे भी बोले—"मैं बेगुनाह होने का दावा नहीं करता।"

गाँधीजी बोले—इसका मतलब यह हुआ कि जब हम सब अछूत हैं, तो हम एक दूसरे से अपने आपको अधिक बुरा मानें। सूरदास ने कहा—"मोसम कौन कुटिल खल कारूपी?"

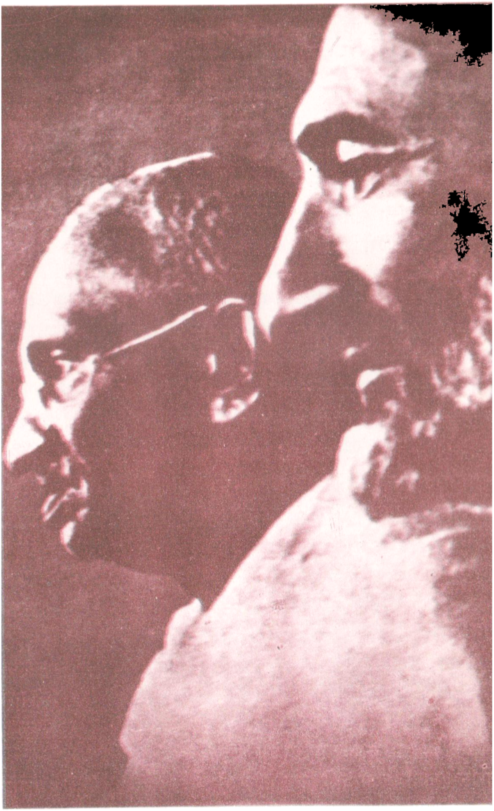
पंडित ने कहा—"इसीलिए तो शास्त्र चाहिए जो हमें इन त्रिविध ताप से उबारें।"

गाँधीजी ने कहा—"मैं ऐसे किसी शास्त्र को नहीं मानता जिसमें आदमी और आदमी के बीच छुआछूत को ईश्वर का नियम कहा गया हो। ईश्वर की नज़र में हम सब बराबर हैं।"

जापान के कवि योन नागुची भारत में आए। वे गांधीजी से मिलने गये। सन् 1935 में दिसंबर में वे वर्धा पहुँचे।

आश्रम को देखकर वे बहुत खुश हुए। उन्होंने उसे पुराने ऋषियों और मुनियों की तपस्या करने की जगह जैसा बताया। उन्होंने लिखा है कि यह एक ऐसा स्थान है जहाँ सारे राष्ट्र की पीड़ा का पता लगता है।

उस समय गाँधीजी बीमार थे, तो वे अपने एक तंबू जैसी जगह में धूप में मालिश करवा रहे थे। टाँगें फैली थीं। संतों जैसी हलकी मुस्कराहट उनके मुँह पर थी। कवि को बड़ा अचरज



सरहदी गाँधी के साथ

हुआ, और उन्होंने पूछा कि "यह क्या है?"

गाँधीजी ने कहा—"यह गीली मिटटी है। रक्तचाप के लिए गीली पट्टी सिर पर रखना बहुत फायदेमंद होता है।"

कवि ने सोचा कि क्या मिट्टी भी ऐसा इलाज कर सकती है?

गाँधीजी ने कहा—"मैं हिंदुस्तान की मिट्टी में पैदा हुआ हूँ और उसी को सिर पर ताज की तरह पहनता हूँ।"

इस पर कवि योन नागुची ने "गंगा मुझे बुलाती है" नामक भारत-प्रवास वाले कविता-संग्रह में एक रचना लिखी है—"वह बेताज का बादशाह अपनी माँ के उपहार का ताज पहने है...."

"फरवरी 1942 में जमनालाल बजाज की मृत्यु हो गई। गाँधीजी तुरंत सेवाग्राम से वर्धा पहुंचे। वे जमनालाल जी को अपना पांचवा पुत्र" मानते थे। जमनालाल जी की पत्नी जानकी देवी बहुत भाव विह्वल हो गईं। बोलीं—बापूजी आप उनके पास होते तो वे नहीं जाते। अब उनको आप जीवित कर दीजिए। क्या आप उन्हें जिला नहीं सकते

गाँधीजी ने गंभीर स्वर में कहा—"मनुष्य को पुनः जीवन देना या उसका जीवन अकारण हरण कर लेना दोनों ईश्वर के हाथों में है। मनुष्य यह काम नहीं कर सकता। जमनालाल सेवा करते रहे। उनका यश अमर है। तुम उनका काम आगे बढ़ाओ। मैं तुम्हें झूठा धीरज देने नहीं आया हूँ। उनका शरीर मर गया, उनकी कीर्ति आगे जिंदा रखना हमारा काम है।"

पर जानकी देवी बहुत अधिक दुख में थी। वे बोली—"नहीं बापूजी मैं सती होना चाहती हूँ। पति के साथ चिता में जल जाना चाहती हूँ। मुझे अनुमति दीजिए।"

गाँधीजी बोले—"जिंदा शरीर को जलाने स क्या फायदा। यह तो मिट्टी है। अपने दुर्गुणों को जलाना ही सच्चा सती होना है। अपने दुर्गुणों को चिता में जला दो। फिर जो बाकी बचेगा वह

शुद्ध सोना होगा। उसे जलाया नहीं जाता। उसे तो कृष्णार्पण ही करना चाहिए।"

पता नहीं गाँधीजी के शब्दों से उनमें कैसी शक्ति आ गई। वे उठ खड़ी हुई और बोलीं—"आज से मैं और मेरा सब कुछ कृष्णार्पण है।" यानी वे भी जमनालाल जी की ही तरह देश सेवा में जुट गईं।

सेवाग्राम में पाचलेगांवकर महाराज नाम के एक साधु आए, जो साँपों से डरते नहीं थे, बल्कि उनसे दोस्ती करते थे। उन दिनों आश्रम में साँप बहुत अधिक निकलते थे—यह पता लगा तो स्वामी आनंद ने इस साधु को वहाँ बुलाया। एक दिन वह मगनवाड़ी वर्धा में आ गया। बापू वहाँ आए थे, चूंकि कांग्रेस की कार्यकारिणी सभा वहाँ हो रही थी। "हॉफकिन इंस्टियूट" के कर्नल सोखे से गाँधीजी साँपों के बारे में काफी जानकारी, पत्र व्यवहार से पा चुके थे। साधु से गांधीजी ने सांपों के बारे में अनेक प्रश्न पूछे। पर साधु उस वैधानिक जानकारी से अधिक कुछ बता न सके।

जिस समय वह साधु वहाँ आए तो उनके पास में गले में एक साँप था। वह आगे बढ़े और उन्होंने गाँधीजी के गले में उस साँप को माला की तरह पहनाना चाहा। अब कार्यकारिणी के सब सदस्य बहुत डर गए। पर गाँधीजी ने उन्हें नहीं रोका और साँप को गले में पहना रहने दिया। लोगों को लगा कि वह साधु ऐसा ही कोई पनियल साँप ले आया है, और अपनी बहादुरी दिखा रहा है—कि साँप के ज़हर पर उसने काबू पा लिया है। पर नहीं, पाँचलेगाँवकर महाराज ने उस साँप का मुंह खोलकर उसके दाँत और ज़हर की थैली जो उस दाँत के पीछे छिपी रहती है, दिखाई और चैलेंज दिया कि—"कोई अपने आपको साँप से डसवाने को तैयार हो जाए, तो मैं उसका जहर तुरंत निचोड़ दूंगा।"

गाँधीजी ने कहा "मैं तैयार हूँ।"

पर कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्यों ने उन्हें ऐसा करने से

रोक दिया। दूसरे एक सज्जन इस प्रयोग के लिए तैयार हो गए। पर साँप ने उन्हें काटने से इनकार कर दिया।

बापू ने हँसकर कहा—"साँप ने सत्याग्रह कर दिया है।"

इससे सिद्ध हुआ कि साँप हर किसी को यों ही नहीं काटता।

चिरपरिचित मुस्कान



यदि उसे डर लगता है कि कोई उस पर हमला कर रहा है तो आत्मरक्षा में वह ऐसा करता है।

एक बार सेवाग्राम में कुएँ के पास वाली कुटी में साँप निकल आया। अब आश्रम वाले बहुत घबराए। गाँधीजी उसे मारने के पक्ष में नहीं थे। तब गाँधीजी ने दो लंबे बाँसों का एक ऐसा साधन बनवाया था जिससे साँप पकड़ कर उन बाँसों पर लिपटा रहे और उसे दूर जाकर जंगल में छोड़ दिया जाए। उसी तरह उसे पकड़कर आश्रम से बहुत दूर झाड़ियों में छोड़ दिया गया।

गाँधीजी का यह मानना था कि साँप मनुष्य का शत्रु नहीं है, परंतु उसे हमारी शहरी सभ्यता ने शत्रु बना दिया है। उसे अहिंसक ढंग से ही जीता जा सकता है। उसकी हमारे प्राकृतिक पर्यावरण में चूहे आदि प्राणियों को नष्ट करने में आवश्यकता है। पहले घने पेड़ होते थे, जिनपर उल्लू आदि प्राणी रहते थे, जो साँप के शत्रु होते हैं। मोर भी साँप को काट डालता है। प्रकृति में यह नियम चला आ रहा था कि जीवन के विरोधी तत्वों को जीवन स्वयम् नष्ट करता जाता है, और जीवन बराबर बढ़ता जाता है। पेड़ कट गए, तो वे पशुपक्षी नष्ट होते गए जो जीवन के लिए उपयोगी थे। उनसे साँप जैसे प्राणी शहर की ओर भागने लगे। मनुष्य उनसे डरने लगा।

हिंदुस्तानी प्रचार सभा की बैठक गाँधीजी की कुटी में होने वाली थी। गाँधी की कुटी में न मेज थी, न कुर्सी। चटाई पर छोटी सी गादी पर बैठकर एक लकड़ी के फट्टे के सहारे दीवार से टिककर गाँधीजी पुराने ढंग की लिखने की डेस्क से काम लेते थे। मिट्टी-गोबर से लिपे फर्श पर चटाई पर ही और लोग आकर बैठते थे।

उस दिन गाँधीजी ने वहाँ एक कुर्सी मंगवाई। खुद एक छोटी सी तिपाई ले आए और उस पर उन्होंने एक मिट्टी का सकोरा रख

दिया। यह देखकर और लोग अचरज से देखने लगे। एक ने हिम्मत करके पूछा, "बापूजी आप यह सब क्या कर रहे हैं?"

गाँधीजी ने कहा—"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद आने वाले हैं न? उन्हें जमीन पर बैठने की आदत नहीं है। उनके लिए यह इंतजाम कर रहा हूँ।"

"और यह मिट्टी का सकोरा क्यों?"

"यह एक राखदानी है।"

गाँधीजी अपने यहाँ आने वाले अतिथियों की सुविधा का कितना ध्यान रखते थे, यह इससे स्पष्ट होता है, वे अपनी जीवन पद्धति से दूर ढंग की जीवन-पद्धति जीने वाले की अड़चन समझते थे। वे नहीं चाहते थे कि इन्हीं के विचार और आचार दूसरों पर जबर्दस्ती लादे जाएँ। कोई अहिंसक ढंग से उन्हें अपनाता है, तो वे इसका स्वागत करते थे।

गाँधीजी छोटी से छोटी चीज का ध्यान रखते थे। मनोहर दीवान से उन्होंने कहा कि "पूनियां लपेटने का जो डोरा था, वह कहाँ गया"? उन्होंने दूसरा डोरा ला दिया पर वे बोले—"नहीं यह नहीं चलेगा। मुझसे डोरा गुम हो जाए, यह कैसे चलेगा"

मनोहर दीवान ने पूछा—"बापूजी इस छोटे से डोरे में क्या रखा है?"

बापू बोले—"अगर मेरे हाथ से डोरा गुमने लगे तो स्वराज्य भी गुम होने में देर नहीं लगेगी।"

बापूजी जो चिट्ठियाँ आती थीं उनके लिफाफे, तार के कागज़, चिट्ठियों में एक तरफ से कोरे कागज़ या बचे हुए कागज़ को भी संभालकर, काटकर रखते थे। वे सोचते थे कि कागज का अपव्यय हमें नहीं करना चाहिए।

गाँधीजी यह भी चाहते थे कि सब चीज़ें जो काम में लाई जाएँ वे स्वदेशी हों। एक बार उन्होंने आश्रम में कृष्णचंद्र से कहा कि बढ़ई के सब औज़ार ले आओ। वह बाज़ार से खरीदकर ले आए। गाँधीजी ने कहा—ये तो कई विदेश के बने हुए हैं। रंधा, बसूला

गिरापिट, दराँती। यह सब तभी मैं काम में लाऊँगा जब वे स्वदेश में बने हुए हों। इसी कारण से सिला हुआ कपड़ा पहनना उन्होंने छोड़ दिया था, चूंकि तब "सुई" भी हिंदुस्तान में नहीं बनती थी, न सिलाई की मशीन, न कैंची, न अंगुस्तान। उन्होंने पुराने ढंग की धोती और चादर, बिना सिला हुआ कपड़ा पहनना ही जीवन के अंतिम कई दशकों में अपना पहनावा बना लिया था।

एक दिन एक हरिजन नौजवान जो स्नातक था, सेवाग्राम में आया। वह गाँधीजी के साथ आश्रम में उनकी सहायता करना चाहता था, और सलाह लेना चाहता था। वह बोला—"मैं आदमियों की सेवा करना चाहता हूँ, पर ईश्वर में मेरा विश्वास नहीं है।"

गाँधीजी ने जवाब दिया—"मनुष्य से प्रेम और सेवा बहुत अच्छी बातें हैं। पर मनुष्य ईश्वर का स्थान नहीं ले सकता। ईश्वर के बारे में अलग-अलग समूह में लोग अलग-अलग तरह की कल्पनाएँ करते हैं, और उनमें अधूरापन आ जाता है। असल में आप ईश्वर पर विश्वास नहीं करते, इसका मूल कारण यह है कि लोग ईश्वर का नाम लेते हैं, पर उसे अपने जीवन में उसकी सजीव प्रतिकृति मनुष्य के साथ सही व्यवहार नहीं करते। हर मनुष्य में ईश्वर है, यह मानना ही ईश्वर पर सच्चा विश्वास रखना है। प्रेम या अहिंसा में ही भगवान है।"

हरिजन युवक से उन्होंने कहा कि जब तक यह पूरा विश्वास पैदा न हो, वह आश्रम में रहे।

एक दिन आश्रम के उस समय के मंत्री छगनलाल जोशी ने कहा कि आश्रम में कोठार के काम में, हिसाब में कुछ गड़बड़ी हो गई है। उस दिन शाम की प्रार्थना में उन्होंने बड़े से कहा कि "छगनलाल भाई ने इस सत्य को छिपाकर रखा यह बहुत बुरी बात हुई है। हम इस आश्रम को "सत्याग्रह आश्रम" कैसे कहें, इसे उद्योग मंदिर कहेंगे।" छगनलाल गाँधी गाँधीजी के ही

भतीजे थे। गाँधीजी आत्मशुद्धि के लिए उपवास की बात करने लगे। किसी ने यह बताया कि कस्तूरबा को किसी ने चार रुपये उपहार में दिए थे। वह आश्रम के दफ्तर में जमा नहीं किए गए। गाँधीजी को इस बात का भी बहुत बुरा लगा। वे रात के तीन बजे

भारत कोकिला सरोजिनी नायडू से हँसी मज़ाक



आत्मशुद्धि पर लेख लिखते रहे। उसमें उन्होंने बड़ी सख्ती के साथ छगनलाल और कस्तूरबा की आलोचना की।

हैदराबाद में सरोजिनी नायडू ने यह लेख पढ़ा और उन्हें बहुत बुरा लगा कि गांधी ने अपनी पत्नी का इस तरह सबके सामने, अपने लेख में, अपमान किया। आश्रम में उन्होंने आकर गांधीजी से अपना गुस्सा व्यक्त किया।

गाँधी ने कहा—"सरोजिनी देवी, यह नाराज़ होने की बात नहीं है। मैं इसे बड़ी खुशी का दिन मानता हूँ। भगवान ने मुझे एक बड़े पाप से बचा लिया। आज मैं अपने नज़दीकी रिश्तेदारों के दोष नहीं बताता, तो कल सारे आश्रम में यह बात फैल जाती। और धीरे-धीरे भ्रष्टाचार हमारे सारे जीवन को खा जाता।"

गाँधीजी छोटी से छोटी भूल के सार्वजनिक प्रायश्चित में विश्वास करते थे। इसमें वे पत्नी, पुत्र, मित्र, किमी को क्षमा नहीं करते थे।

सन् 36 में सेवाग्राम आश्रम में एक हट्टा-कट्टा नवयुवक गाँधी के पास आया और बोला—"मुझे आप नौकर रख लीजिए। मैं विनोबा के पास काम कर चुका हूँ।"

गाँधीजी ने कहा—"हम आपको अपने परिवार का एक अंग बनाकर रखेंगे। पर नौकर बनाकर नहीं। आश्रम में कोई किसी का नौकर नहीं है।"

यह आदमी कई दिनों तक विश्वास के साथ काम करता रहा। पर उसे चोरी करने की आदत थी। वह लोभ के मारे यह काम करता। एक दो बार पकड़ा गया गाँधीजी ने उसे अपने प्रेम से और उसका गुनाह उससे कबूल करवा लिया। इस युवक ने पहले गाय का भूसा चुराया था, फिर अपने बुड्ढे बाप के लिए गेहूँ चुराए। बाप दमे से बीमार था, घर में स्त्री और तीन बच्चे थे। घर में वह और उसकी माँ दो ही कमाते थे। स्त्री बीमार रहती थी।

युवक ने चोरी स्वीकार की और रोकर कहने लगा—"मुझे आप जो चाहें, सजा दें। मेरी तो आपके पास आने की हिम्मत ही

नहीं होती थी। मजबूरी में मैंने चोरी की। मुझे लगता है मैं आत्महत्या कर लूँ। अब मैं आश्रम से चला जाऊँगा। मैं आपके प्रेम का पात्र नहीं हूँ।"

गाँधीजी ने कहा—"मैं तुम्हें कोई सजा नहीं दूँगा। मैं आश्रम से तुम्हें निकालूँगा भी नहीं। तुम प्रतिज्ञा करो कि आगे ऐसा काम कभी नहीं करूँगा। आश्रम की सारी संपत्ति जनता की संपत्ति है। यह एक ट्रस्ट है। तुम्हें यहाँ चोरी नहीं करनी चाहिए। बूढ़े बाप के लिए जो भी चाहिए माँगकर ले जाओ। तुम हमारे परिवार के एक सदस्य हो।"

साबरमती आश्रम में गांधीजी ने यह नियम बनाया था कि आश्रम में पैदा होने वाली साग-भाजी ही काम में लाई जाए, बाहर से कोई साग-भाजी न मँगाई जाए।

उस समय आश्रम के खेत में कद्दू खूब होते थे। इसलिए रोज उसी की सब्जी बनती थी। इस सब्जी को भी बड़े-बड़े टुकड़े काटकर उबालकर रख दिया जाता था। उसमें नमक नहीं डाला जाता था, जिसे जरूरत होती वह ऊपर से नमक ले सकता था। आश्रमवासी भाई-बहनों की गांधीजी से शिकायत करने की हिम्मत न होती।

श्री नरहरि भाई पारीख की पत्नी ने कद्दू की सब्जी पर एक गीत ही लिख डाला। बा ने यह गीत सुना तो गांधीजी के पास शिकायत लेकर पहुँची और उन्हें गीत की बात सुनाती हुई बोलीं—"आपकी कद्दू की सब्जी भी अच्छी मुसीबत है। एक बहन को बादी हो गई है, दूसरी के सर में चक्कर आते हैं और तीसरी को डकारों के मारे चैन नहीं है। कद्दू का साग क्या कभी सिर्फ उबालकर बनाया जाता है? उसमें मैथी का बघार लगाना चाहिए, गर्म मसाला चाहिए, तब तो ठीक रहता है, वर्ना तो नुकसान करेगा ही।"

अगले दिन प्रार्थना के बाद गांधीजी ने कहा—"हमारे आश्रम में एक नए कवि पैदा हुए हैं, अब हमें उनकी कविता सुननी

चाहिए।'' इसके बाद गांधीजी ने नरहरि भाई की पत्नी मणि बहन से कद्दू के संबंध में लिखा वह गीत गवाकर सुना।

गीत पूरा होने पर गाँधीजी ने हँसते हुए कहा—''अच्छा, तुम लोगों की शिकायत मंजूर। जिन्हें बघार लगाकर और मसाला डालकर यह सब्जी खानी हो, वे मुझे अपने नाम लिखा दें।'' गाँधीजी सोचते थे कि बहनें संकोच के मारे अपना नाम नहीं लिखाएँगी। तभी बा बीच में ही बोल उठीं—''इस तरह कोई बहन अपना नाम आपको नहीं देगी। हम सब बहनें मिलकर खुद ही नाम तय कर लेंगी।''

गाँधीजी बोले—''तो ठीक ऐसा ही करो, लेकिन देखना इसमें बच्चों को शामिल मत करना। बच्चे बिना मसाले की सब्जी

बा के साथ



पसंद करते हैं।'' बा के पास इसका उत्तर तैयार था-''इस तरह बच्चों को बहका-बहकाकर आप अपने पक्ष में कर लेते हैं।''

इसके बाद बहनों ने अपने नाम लिखा दिए और गाँधीजी से मसाला खाने की इजाजत पा ली। मगर गाँधीजी किसी को आराम से मसाला खाने देने वाले थोड़े ही थे। बहनें गांधीजी के सामने वाली पंक्ति में ही खाने बैठती थीं तो गाँधीजी उनको ताना मारते हुए कहते थे—''क्यों बघार कैसा लगा है? सब्जी चटपटी बनी है न?

बा भी कम नहीं थीं। वें गाँधीजी से कहतीं—''अब रहने भी दीजिए आप क्या कुछ कम थे? हर रविवार को मुझसे पूरन पोली और पकौड़ियाँ बनवाकर पहले चटकर जाने वाले आप ही थे या कोई और?''

गाँधीजी कहते—''तू तो मेरी सारी पोल खोल देगी।''

इस तरह से गांधीजी आश्रम में आने वाले हर छोटे-बड़े व्यक्ति का खुद ख्याल रखते। कस्तूरबा और दूसरे आश्रम के भाई-बहनों को स्वयम् सेवाओं से उदाहरण देते जाते। वे खुद करते, फिर कहते। गाँधी केवल उपदेशक नहीं थे। कर्मयोगी थे।

